UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178791

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/T12R Accession No. H 1671

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

रवीन्द्र-साहित्य : भाग १

दो बहन

उपन्यास

और

घाटकी बात, कङ्काल, स्वर्णमृग आदि कहानियाँ

अनुवादकर्ता

धन्यकुमार जैन

रवीन्द्र - साहित्य - मन्दिर

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता - ७

रवीन्द्र-साहित्यका
प्रत्येक भाग
एक पृथक
ग्रन्थ है

रवीन्द्र-साहित्यकी
समस्त रचनाएँ
मूल बंगलासे
अनूदित हैं

मजबूत गत्तेकी जिल्द
मूल्य प्रति-भाग २।)
~~मूल्य २।) सवा-दो रुपया~~ प्रति भाग
धन्यकुमार जैन

प्रकाशक
धन्यकुमार जैन
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड
कलकत्ता-७

उपन्यास

'दो बहन'पर दो शब्द

रवीन्द्रनाथने, अपने 'दो बहन' उपन्यासके सबन्धमें लिखे-गये एक पत्रके उत्तरमें लिखा है :— तुम लिखते हो कि तुम्हारी बान्धवी मेरी कल्पित दो बहनोंके भाग्य-विपर्ययका सारा दोष शशाङ्कपर मढ़ रही हैं। उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि दोष असलमें प्रकृति-मायाविनीका है। आदमीके चलनेके रास्तेमें वह निर्दय-निष्ठुर 'धोखेकी टट्टी' बिछा रखती है, राहगीर बेचारा बेधड़क चलते-चलते अचानक ऐसी जगह कदम रखता है जहाँ ढका-हुआ गड्ढा होता है। शशाङ्ककी गार्हस्थिक जीवन-यात्राका रास्ता देखनेमें तो मजबूत था, पर, उसके चलनेके लिए उसमें थी फिसलन। उस अभागेको गड्ढेमें पड़कर, हाड़-गोड़ टूटनेके पहले क्षण तक, यह पता ही नहीं था कि उसका अगला कदम उसे कहाँ ले जायगा। दिन अच्छी तरह बीत रहे थे, किन्तु जिस पुलसे वह पार हो रहा था उसकी बनावटमें पोल थी ; क्योंकि शशाङ्क और शर्मिलाका भीतरसे जोड़ नहीं मिला था ; और साथ ही ऊपरसे किसीको उसका पता भी नहीं चला। अचानक बाहरसे टूटनेकी आवाज सुनाई देनेके पहले क्या इस बातका उनमेंसे किसीको कुछ पाता था ? जब मालूम हुआ, तब तो तकदीर फूट चुकी थी। सलाह देनेवाले कहेंगे कि 'तकदीरपर बेण्डेज बाँधकर भले-आदमियोंकी तरह लंगड़ाते-लड़खड़ाते और ठोकर खाते-हुए उसी पुराने रास्तेपर ही चलना चाहिए था लाठीके सहारे। शशाङ्क इसी तरह चलता। पर, शर्मिला कह बैठी, वैसे चलनेमें दोनोंमेंसे किसीको भी आराम नहीं। हिमाकतके साथ उसने अपने खास प्लैनके माफिक तकदीरकी गलती सुधारनेका प्रस्ताव पेश किया। किन्तु, भाग्यके लेखपर कलम चलाना इतना आसान नहीं। इस बातको समझा था ऊर्मीने। भूकम्पके कम्पन-केन्द्रस्थलपर कच्चे मसालेसे बने डगमगाते-हुए घरमें रहना उसे पसन्द न था। इसीसे वह भाग खड़ी हुई। उसके बाद क्या हुआ, सो कौन कह सकता है ? कालान्तरमें, कटनेका ऊपरी दाग शायद मिट गया होगा, पर कभी-कभी धक्का लगने या हिलने-डुलनेपर क्या

भीतरकी कटी-हुई स्नायुमें दर्द आज भी टीस नहीं मारने लगता ? दर्द जिनके होता है उन्हींपर हम जज बनकर फैसला कर देना चाहते हैं; पर उस दर्दके लिए क्या हमेशा वे खुद ही जिम्मेदार होते हैं ? बिजली टूट पड़ी, आदमी मर गया ; तुमने कह दिया कि पहले जन्मके पापका फल है। इससे सिर्फ दोष देनेकी अन्धी इच्छाका ही सबूत मिलता है ; दोषका प्रमाण नहीं मिलता।

तुमने लिखा है कि तुम्हारी बान्धवी मेरी इस कहानीके सभी पात्रोंके खिलाफ हैं। तीन ही तो प्राणी हैं उसमें ; फिर भी उनमेंसे कोई भी एक उनके मन-माफिक नहीं हुआ। इस बारेमें दुःखित होनेकी कोई वजह नहीं। क्योंकि अभिव्यक्ति-तत्त्वकी प्राकृतिक निर्वाचन-पद्धति साहित्य और समाजमें एकसी नहीं होती। ऐसे दृष्टान्तोंकी जहाँ-तहाँ भरमार मिलेगी कि समाजमें जिन्हें हम इष्ट-मित्रोंके दरजेमें शुमार नहीं करते, साहित्यमें उनका काफी आदर करते हैं। आदर्श मानव-चरित्रके पैमानेसे नाप-जोखकर साहित्यकी श्रेष्ठताका फैसला देनेका चलन शायद इस देशके सिवा संसारमें और किसी भी देशके समालोचकोंमें नहीं देखा जाता।

साहित्य कोई श्रेयस्तत्त्वके विशुद्ध साँचेमें खिलौना ढालनेवाला कारखाना नहीं, क्या यह बात भी समझानी पड़ेगी ? 'मैकबेथ' नाटकमें दो ही प्रधान पात्र हैं, मैकबेथ और लेडी मैकबेथ। कहनेकी जरूरत नहीं कि दोनोंमेंसे किसीको भी सुकुमार-मति पाठकोंके चरित्र-गठनके लिए दृष्टान्तके तौरपर पेश नहीं किया जा सकता। 'एण्टॉनी एण्ड क्लियोपैट्रा' शेक्सपीयरके प्रधान नाटकोंमेंसे अन्यतम है ; किन्तु, क्लियोपैट्रा प्रातःस्मरणीय पञ्च-कन्याओंमें स्थान पानेकी अधिकारिणी होनेपर भी उसे साध्वीका आदर्श नहीं कहा जा सकता, एण्टॉनी अपने चरित्रके अनिन्द्य आदर्शमें आधुनिक उच्चश्रेणीके बंगला-उपन्यासोंके नायकोंके बराबरके दरजेका नहीं, यह बात माननी ही पड़ेगी। साथ ही यह भी माने बगैर काम न चलेगा कि शेक्सपीयरका नाटक ऊँचे दरजेके बंगला उपन्याससे कमसे कम किसी भी अंशमें कम नहीं। 'महाभारत' धृतराष्ट्रको तुच्छ नहीं कर सका ; परन्तु महत्त्वमें उनके कमी

थी। थी किसके नहीं ? स्वयंवर-सभामें भीष्म ही क्या क्षमाके योग्य थे ? और तो क्या, कविके प्रियपात्र पाण्डवोंके आचरणमें कलङ्क ढूँढ़ निकालनेके लिए ज्यादा तीक्ष्ण दृष्टिकी जरूरत नहीं पड़ती। आज हमारे यहाँ वेदव्यास नहीं पैदा हुए, यह उनके पुण्यका फल है।

दूसरे पक्षकी तरफसे तर्क उठाया जा सकता है कि साहित्यमें समाजधर्म और शाश्वतधर्मकी त्रुटि दिखाई देती है उसकी अपनी ही शोकपूर्ण परिणति का प्रमाण देनेके लिए। इसका मतलब यह दिखाना है कि स्खलनका मार्ग सुखका मार्ग नहीं। किन्तु, देखनेमें आता है कि आजकल इससे भी भले आदमियोंका क्षोभ शान्त नहीं होता। 'घर और बाहर' उपन्यासमें सन्दीप या विमलाने गौरवजनक सिद्धि प्राप्त नहीं की ; किन्तु फिर भी, लेखकको उस दिन समालोचकोंके दरबारमें दण्ड पानेसे छुटकारा नहीं मिला। एक साथ सब गला फाड़-फाड़के फरमाइश करने लगे कि 'जैसे भी हो, श्रेष्ठ आदर्श की रचना करनी ही पड़ेगी !' बच्चोंका दुलार इसीको कहते हैं, जिनकी जीभ हमेशा चीनीके खिलौने चाटा चाहती है।

'दो बहन' के बारेमें तुम मेरी अपनी व्याख्या कुछ सुनना चाहते हो। मैंने तो उसका कहानीकी भूमिकामें ही परदाफाश कर दिया है। साधारणतः स्त्रियाँ पुरुषोंके विषयमें कोई 'मा' होती हैं, और कोई 'प्रिया', और कोई दोनोंका सम्मिश्रण। हमारे देशमें ऐसे अनेक पुरुष हैं जो बुढ़ापे तक 'मा' की ही गोदकी आब-हवामें सुरक्षित रहते हैं। वे स्त्रीके पाससे 'मा'का पालन ही ज्यादा पाते हैं और उसीको उपभोग्य समझते हैं। दूल्हा ब्याह करनेके लिए जब घरसे रवाना होता है तब मासे कहता है, 'मा, तुम्हारे लिए दासी लाने जा रहा हूँ।' अर्थात्, स्त्री आती है 'मा' का 'परिशिष्ट' बनकर, Alma Mater को पोष्टग्रैजुएट छात्राके समान। लड़का अपने जीवनके प्रारम्भसे ही मासे जो-जो सेवाएँ पाता आया है, उस आदतके माफिक, बहू आकर उसीको दुहराती है। बहुत कम स्त्रियोंको ही ऐसा मौका मिलता है जो अपनी स्वतन्त्र-रीतिसे पतिकी अपूर्णताको पूर्ण करती हों और घर-गृहस्थीको सम्पूर्णतः अपने अभिप्रायके अनुसार नया रूप दे सकती हों।

और फिर, ऐसे पुरुष भी जरूर होंगे जो स्निग्ध और आर्द्र लाड़-प्यारके आवेशसे ऊपरसे नीचे तक हमेशा ढके रहना कतई पसन्द नहीं करते। वे स्त्रीको चाहते हैं सम्पूर्ण स्त्रीके रूपमें, वे चाहते हैं युगलका अनुसङ्ग, यानी दोनोंका संयोग या संग-साथ। वे यह जानते हैं कि स्त्री जहाँ यथार्थ स्त्री है, पुरुषको वहीं यथार्थ पौरुषके लिए अवकाश मिलता है। नहीं-तो उसे लालन-रस-लालायित बालककी तरह चीनीके खिलौनेसे ही अपना जी बहलाना पड़ता है। 'मा'की 'दासी'के साथ दाम्पत्य-जीवन बितानेके समान ऐसी कमजोरी पुरुषके जीवनमें और क्या हो सकती है ?

शशाङ्कने अपनी स्त्रीके अन्दर नित्य-स्नेहमयी सावधान 'मा' को पाया था। इसीसे उसका हृदय-मन था अपरितृप्त। ऐसी अवस्थामें ऊर्मी उसके दरवाजेके पास आ खड़ी हुई, और तब उनमें संघात शुरू हो गया, जिसका परिणाम हुआ ट्रैजिडी, दुःखान्त। दूसरा पहलू देखो तो, अति-निर्भर-लोलुप स्त्रियाँ भी संसारमें बहुत मिलेंगी। वे ऐसे पुरुषको चाहती हैं जो उनके हृदय-यात्राके मोटर-रथके शोफर हो सकें। वे चाहती हैं पतिगुरुको, उनकी पदधूलिकी भिखारिन होती हैं वे। किन्तु इससे विपरीत जातिकी स्त्रियाँ भी जरूर होंगी जो अति-लालनको न सह सकनेवाले पुरुषको ही चाहती हैं, जिन्हें पाकर उनका नारीत्व पूर्ण परिणतिको प्राप्त हो सके। दैवयोगसे उर्मी उसी जातकी स्त्री है। शुरूसे ही 'चालक' और 'गुरु'को पाकर उसका हृदय काँपने लगा था। ठीक उसी समय यह ऐसे पुरुषको पा गई जिसका चित्त अपने अज्ञानमें स्त्रीको ही ढूँढ़ रहा था, जिसके साथ उसकी लीला अपने जीवनकी सम-भूमिपर सम्भव हो सकती है वही उसका यथार्थ साथी है।

भाग्यके अन्यायको सुधारनेकी कोशिश की गई तो सामाजिक अन्याय उग्र हो उठा। बस, इतनी-सी बात है। उपसंहारमें इतना कह देना ठीक होगा कि सभी स्त्रियोंके भीतर 'मा' और 'प्रिया' दोनों मौजूद हैं। उनमें कोई मुख्य होती है तो कोई गौण, कोई आगे चलती है तो कोई पिछड़ जाती है। इसीसे उनमें तारतम्य दिखाई देता है।

श्रावण, १९९०]

दो बहन

शर्मिला

किसी-किसी विद्वानके मुँह सुना है, स्त्रियाँ दो तरहकी होती हैं, अर्थात् उनकी दो जात हैं।

एक जात है मुख्यतः 'मा' की, और दूसरी 'प्रिया' की।

यदि ऋतुओंके साथ तुलना की जाय, तो 'मा' है वर्षाऋतु। पानी देती है, फल देती है, ताप दूर करती है, ऊर्ध्वलोकसे अपनेको विगलित करके देती ही रहती है; शुष्कता दूर करती है, और हमारी कमियोंको पूरा करती है।

और, 'प्रिया' है वसन्तऋतु। उसका रहस्य गहरा है, मधुर है उसका मायामन्त्र, उसकी चञ्चलता रक्तमें तरंगें पैदा करती रहती है, और वे तरंगें चित्तके उस मणिमय कोठे तक पहुँचती रहती हैं जहाँ सोनेकी वीणामें एक छुपा-हुआ तार चुपचाप पड़ा उस झंकारकी बाट देख रहा है जिस झंकारसे सारे शरीर और मनमें अनिर्वचनीय वाणी बज-बज उठती है।

शशाङ्ककी स्त्री शर्मिला मा-जातकी है।

बड़ी-बड़ी प्रशान्त आँखें हैं, धीर-गम्भीर है उनकी चितवन। पानीसे भरे नये बादल-जैसा भरा-पूरा सुडौल शरीर है उसका, कोमल, तर, चिकना, साँवला। माँगमें सिन्दूरकी अरुण रेखा है, साड़ीकी किनारी है काली, खूब चौड़ी। दोनों हाथोंमें मगर-मुँही मोटे-मोटे सोनेके कड़े हैं; उस गहनेकी भाषा साज-शृङ्गारकी भाषा नहीं, शुभ-साधनकी भाषा है।

पतिके जीवन-लोकमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ उसके साम्राज्यका प्रभाव शिथिल हो। स्त्रीके अति-लालनकी छायामें पतिका मन हो गया है असावधान। फाउन्टेन-पेन मामूली-सी चूकसे अगर टेबिलके इधर-उधर कहीं क्षण-भरके लिए भी आँखोंसे ओझल हो जाय, तो उसे खोज निकालनेकी

जिम्मेदारी है स्त्रीपर। नहाने जानेके पहले हाथ-घड़ी कहाँ रख दी थी, सहसा शशाङ्कको उसकी याद नहीं रहती; पर स्त्रीकी निगाह उसपर जरूर पड़ जाती। दो रंगके दो मोजे पहनकर जब वह बाहर जानेके लिए तैयार है तब स्त्री आकर उसकी गलती सुझा देती। बंगला महीनेके साथ अंग्रेजी महीनेकी तारीखका जोड़ मिलाकर वह मित्रोंको न्योता देता है; उसके बाद असमयमें अचानक बगैर उम्मीदके अतिथि आ जाते हैं तो उसकी सारी आफत उठानी पड़ती है स्त्रीको। शशाङ्क निश्चित जानता है कि रोजमर्राके काम-काजमें कहीं कोई खामी होते ही स्त्रीके हाथ सुधार हो ही जायगा, इसीसे गलती करना उसके स्वभावमें शामिल हो गया है। स्त्री स्नेहके साथ तिरस्कारके स्वरमें कहती, "अब मुझसे नहीं होता। तुम्हें क्या कभी भी समझ नहीं आयेगी।" पर, अगर उसमें समझ आ जाती तो शर्मिलाके दिन हो जाते गैर-आबाद फसलकी जमीनके समान।

आज शशाङ्क शायद मित्रोंमेंसे किसीके घर न्योतेमें गया है। रातके ग्यारह बज गये, बारह बज गये,—ब्रिजका खेल चल रहा है। सहसा एक मित्र हँसता-हुआ बोल उठा, "लो, तुम्हारा वारण्ट लेकर आ गया पियादा। तुम्हारी मियाद खतम!"

वही चिर-परिचित नौकर है महेश। सफेद मूँछ, सिरके बाल काले, बदनपर मिरजई, कँधेपर रंगीन झाड़न और बगलमें बाँसकी लाठी। उसकी 'बहूजी'ने उसे भेजा है, 'बाबू साहब यहाँ हैं क्या?' 'बहूजी'को डर है कि लौटते वक्त अँधेरेमें कोई दुर्घटना न हो जाय। साथमें उन्होंने लालटेन भी भेजी है।

शशाङ्क झुँझलाकर ताश पटकके उठ खड़ा होता। मित्र कहते, "अहा, बेचारा अरक्षित पुरुष,—अकेला कैसे जाय!"

घर आकर शशाङ्क स्त्रीसे जो बातें करता, न तो उसकी भाषा मुलायम होती और न शैली ही शान्त होती।

शर्मिला चुपचाप उसकी डाट-डपटको सह लेती। क्या करे, उससे रहा नहीं जाता। वह अपने मनसे इस आशङ्काको किसी भी तरह निकाल नहीं

सकती कि उसकी गैरहाजिरीमें दुनिया-भरकी तमाम सम्भव-असम्भव आफतें उसके पतिकी राहमें साजिशके लिए तैयार खड़ी हैं।

बाहर आदमी आया है मिलने, शायद कामकी ही बात हो रही होगी। क्षण-क्षणमें भीरतसे छोटी-छोटी चिटें आ रही हैं, 'याद है, कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज जल्दी खानेको आना।'

शशाङ्क गुस्सा भी होता और हार भी मान लेता। उसने बड़े दुःखसे एक बार स्त्रीसे कहा था, "दुहाई है तुम्हें, चक्रवर्ती-घरानेकी गृहिणीकी तरह तुम किसी देवी-देवताकी शरण ले लो। तुम्हारा पूरा ध्यान मुझ-अकेलेके लिए बहुत ज्यादा है। देवी-देवताको उसमेंसे कुछ बाँट दो तो मेरे लिए वह बड़ा आरामदे हो जायगा। उनसे तुम चाहे कितनी ही ज्यादती क्यों न करो, उन्हें जरा भी आपत्ति न होगी। पर मैं हूं आदमी, आदमी बड़ा कमजोर होता है।"

शर्मिलाने कहा, "हाय-हाय, एक बार काकाजीके साथ मैं हरिद्वार चली गई थी, याद है उस वक्तकी! तुम्हारे मनकी हालत तब कैसी हो गई थी?"

अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, इस बातकी सालङ्कार व्याख्या किसी दिन खुद शशाङ्कने ही की थी स्त्रीके आगे। वह जानता था कि उस अत्युक्तिसे शर्मिला जैसी अनुतप्त होगी वैसी आनन्दित हुए बिना भी न रहेगी। आज वह अपने उस अमित भाषणका प्रतिवाद करे तो कैसे करे? चुपचाप उसे मान ही लेना पड़ा हो सो बात नहीं, दूसरे दिन सवेरे-सवेरे जब शर्मिलाकी कल्पनाके अनुसार उसके कुछ जुकाम-सा मालूम दिया तो उसे कुनैन खानी पड़ी दस ग्रेन, और ऊपरसे तुलसी-दलका रस मिलाकर चाय पीनी पड़ी सो अलग। विरोध करनेका मुँह ही नहीं रहा, करता क्या? कारण इसके पहले ठीक ऐसी ही हालतमें उसने विरोध किया था, कुनैन नहीं ली थी, नतीजा यह हुआ कि बुखार आ गया: और शशाङ्कके इतिहासमें उसका वर्णन अमिट अक्षरोंमें लिख गया। घरमें आरोग्य और आरामके लिए शर्मिलाकी जितनी सस्नेह व्यग्रता है, बाहर सम्मान-रक्षाके लिए सावधानी भी उतनी ही सतेज है। एक दृष्टान्त याद आ गया।

एक बार वह नैनीताल गया था हवा बदलने। पहले ही से पूरे सफरके लिए शुरूसे आखिर तक रेलका डब्बा रिजर्व था। किसी जंक्शनमें गाड़ी बदलकर वह भोजनकी खोजमें चल दिया। वापस आकर देखा कि वरदी पहने एक दुर्जन लोग उन्हें बेदखल करनेकी फिराकमें लगे हुए हैं। स्टेशन-मास्टरने आकर एक विश्व-विख्यात जनरलका नाम लेकर कहा, "कमरा उन्हींका है, गलतीसे दूसरा नाम लग गया है।" शशाङ्क आँखें फाड़कर बड़ी इज्जत दिखाकर दूसरे किसी कमरेमें जानेका इन्तजाम करने लगा। इतनेमें शर्मिला गाड़ीमें चढ़कर दरवाजा रोकके बोल उठी, "मैं देखना चाहती हूँ कौन इमें उतारता है! बुला लाओ अपने जनरलको।"

शशाङ्क अब तक सरकारी पदाधिकारी और उनके ऊपरवालोंके जाति-गोत्रवालों तकसे काफी बचकर चलनेमें अभ्यस्त था। वह घबराकर बोला, "अरे, तुम कर क्या रही हो, और भी तो डब्बे हैं, जरूरत क्या है बखेड़ेकी।"

शर्मिलाने उसकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया।

अन्तमें जनरल साहब रिफ्रेशमेण्ट-रूमसे खाना खतम करके चुरुट मुँहमें दिये निकले, और दूरसे स्त्री-मूर्तिकी उग्रता देखकर खुद ही हट गये।

शशाङ्कने स्त्रीसे पूछा, "जानती हो वह कितना बड़ा-आदमी था?"

स्त्रीने कहा, "जाननेकी गरज नहीं मुझे। जो डब्बा हमारा है, उस डब्बेमें वह तुमसे बड़ा हरगिज नहीं।"

शशाङ्कने पूछा, "अगर बेइज्जत करता?"

शर्मिलाने जवाब दिया, "तुम किस लिए हो?"

शशाङ्क शिवपुर-कालेजका पास किया-हुआ इञ्जीनियर है। घरकी जीवन-यात्रामें उसके चाहे कितनी ही ढिलाई हो, पर नौकरीके काममें वह पक्का है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसके कामकी जगहपर जिस तुङ्गी-ग्रहकी निर्मम दृष्टि है, वह है, जिसको कि चालू-भाषामें कहते हैं 'बड़ा-साहब'। वह स्त्री-ग्रह नहीं है। शशाङ्क डिस्ट्रिक्ट-इञ्जीनियरके पद पर जब कि ऐक्टिंगी कर रहा था, ठीक उसी समय उसकी आसन्न उन्नति घूम गई उलटी तरफ। योग्यताको लाँघकर, तजुर्बा बिलकुल कच्चा होते

हुए भी, जिस अंगरेज युवकने आकर, जिसके कि अभी ठीकसे मूँछें भी न आई थीं, उसका आसन दखल किया, उसके अचिन्तनीय आविर्भावमें थी अधिकारियोंमेंसे सबसे ऊँचे मालिकके सम्बन्ध और सिफारिशकी जीवनी-शक्ति।

शशाङ्कने समझ लिया कि इस अप्रवीण नवीनको ऊपरके आसनपर बिठाकर नीचेकी तहसे उसीको काम चलाते रहना पड़ेगा।

एक अफसरने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा, "वेरी सॉरी, मजुमदार, जितनी जल्दी हो सकेगा, तुम्हारे लिए अच्छी जगह तजबीज की जायगी।" ये दोनों ही एक ही 'फ्रीमेसन-लॉज'के चट्टे-बट्टे हैं।

फिर भी, भरोसा और तसल्ली पानेपर भी, साराका सारा मामला मजुमदारके लिए बहुत ही कड़ुआ हो उठा। घर आकर छोटे-मोटे सभी विषयोंमें उसने खिटखिट शुरू कर दी। अचानक उसकी नजर पड़ी, आफिस-रूमके एक कोनेमें जाला जमा हुआ है। सहसा उसे ऐसा लगा कि चौकीपर जो हरे रंगका ढकना पड़ा है उसका रंग उसके लिए असह्य है। नौकर बरण्डेमें बुहारी लगा रहा था, धूल उड़नेकी वजहसे उसपर वह जोरसे बिगड़ पड़ा। अनिवार्य धूल रोज ही उड़ा करती है, पर उसका बिगड़ना आज यह नया है।

अपने असम्मानकी बात उसने स्त्रीसे नहीं कही। सोचा कि अगर बात उसके कान तक पहुंच गई तो नौकरीकी जटिलतामें एक गाँठ और बढ़ जायगी, और हो सकता है कि वह अधिकारियोंसे जाकर झगड़ा ही कर आवे कड़ी भाषामें। खासकर उस डोनल्डसनपर तो वह बहुत ही नाराज है। एक बार वह सार्किट-हाउसके बगीचेमें बन्दरोंका ऊधम दबाने गया था, तब उसने छर्रेसे शशाङ्कके हैटमें छेद कर दिया था। कोई दुर्घटना नहीं हुई, पर हो तो सकती थी। लोग कहते हैं कि दोष शशाङ्कका ही था, और शायद इसीसे डोनल्डसनपर उसका गुस्सा और भी बढ़ गया। गुस्सेकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि जो गोली बन्दरको लक्ष्य करके छोड़ी गई थी वह शशाङ्कके हैटमें लगी। और दुश्मन दोनोंको 'एक ही बात है' कहकर खूब जोरसे हँस पड़ा था।

शशाङ्ककी इस पदावनतिकी खबर शर्मिलाने खुद ही अपनी कोशिशसे जान ली। पतिका रंग-ढंग देखकर ही वह समझ गई थी कि उसके कहीं न कहींसे कोई काँटा चुभ रहा है। उसके बाद, कारण ढूँढ़नेमें उसे देर न लगी। कॉन्स्ट्यूशनल एजिटेशनके रास्ते वह नहीं गई, वह गई सेल्फ डिटर्मिनेशनकी तरफ। उसने पतिसे कहा, "बस, अब नहीं, अभी तुरत काम छोड़ दो।"

काम अगर वह छोड़ देता, तो अपमानकी जोंक उसकी छातीपरसे छूट कर गिर जाती। किन्तु उसकी ध्यान-दृष्टिके सामने था बँधी तनखावाला अन्नका खेत ; और उसके पश्चिम-दिगन्तमें थी पेन्शनकी चिरस्थायी सुनहरी रेखा।

शशाङ्कमौलि जिस साल एस० एम-सी० डिग्रीकी सबसे ऊँची चोटीपर पहुँचा उसी साल उसके ससुरने, शुभ-कार्यमें देर न करके, शर्मिलाके साथ उसका ब्याह कर दिया। धनी ससुरकी मददसे ही उसने इञ्जीनियरिंगकी परीक्षा पास की। उसके बाद, नौकरीमें जल्दी तरक्कीके लक्षण देखकर राजाराम बाबू अपने भावी जमाईके आर्थिक क्रम-विकाशका निर्णय करके निश्चिन्त हो गये। उनकी लड़कीने भी आज तक कभी यह महसूस नहीं किया कि उनलोगोंकी हालतमें कोई खास परिवर्त्तन हुआ है।

घर-गृहस्थीमें तो कोई कमी आई ही नहीं, और साथ ही मायके-जैसा चाल-चलन वहाँ भी ज्योंका त्यों कायम रहा। इसका कारण यह था कि पारिवारिक राज्यमें सारी विधि-व्यवस्था शर्मिलाके ही अधिकारमें थी। उसके कोई सन्तान नहीं हुई, होनेकी आशा भी नहीं। पतिका सारा रोजगार अखण्ड-रूपसे उसीके हाथमें आता। कोई खास जरूरत पड़नेपर घरकी अन्नपूर्णाके आगे हाथ पसारनेके सिवा शशाङ्कके लिए और कोई चारा नहीं। माँग असङ्गत होती तो नामंजूर हो जाती, और उसे वह सिर झुकाता-हुआ मान भी लेता ; और, उसकी वह निराशा और-किसी तरफसे मधुर-रूपमें पूरी भी हो जाती।

शशाङ्कने कहा, "नौकरी छोड़ देना मेरे लिए कुछ भी नहीं है। पर मैं तुम्हारे लिए सोचता हूँ। तुम्हीं तकलीफ उठाओगी!"

शर्मिलाने कहा, "उससे भी ज्यादा तकलीफ तब होगी जब अन्यायको निगलते वक्त वह गलेमें अटक जायगा।"

शशाङ्कने कहा, "काम तो करना ही होगा। गोदका छोड़कर पेटवालेको किस मुहल्लेमें ढूँढ़ता फिरूँगा?"

"जहाँ तुम्हारी नजर नहीं पड़ती वहाँ। तुम जिसे मजाकमें कहते हो, तुम्हारी नौकरीका 'लूची'स्तान, बेलूचिस्तानकी मरुभूमिके उस पार, जिसके बाहरके संसारको तो तुम किसी गिनतीमें ही नहीं लाते।"

"कैसी आफत है! संसारका क्या ठिकाना, कहाँ तक है! उसका 'सर्वे' करने कौन जायगा? उतनी बड़ी दूरबीन कहाँ मिलेगी?"

"बड़ी-भारी दूरबीनकी जरूरत नहीं। मेरे एक भाई लगते हैं, मथुरा दादा, कलकत्ताके बड़े कन्ट्राक्टर हैं वे, उनके साथ साझेमें काम करना, बस, उसीसे अपना काम चल जायगा।"

"साझा वजनमें बराबर न होगा। अपना पल्ला कुछ हलका रहेगा। बूतेसे बाहर लंगड़ाते-हुए साझा करनेसे इज्जत नहीं रहेगी।"

"अपनी तरफसे कमी किस बातकी है? तुम्हें मालूम है, बापूजी मेरे नामसे जो बैङ्कमें रुपया जमा करा गये हैं वह बढ़ ही रहा है। साझीदारके आगे तुम्हें छोटा नहीं होना पड़ेगा।"

"यह कैसे हो सकता है! वह रुपया तुम्हारा है।"–कहता हुआ शशाङ्क उठ खड़ा हुआ। बाहर आदमी बैठे हैं।

शर्मिलाने कुरता पकड़कर पतिको बिठा लिया; बोली, "मैं भी तो तुम्हारी ही हूँ।"

फिर बोली, "निकालो जेबमेंसे फाउन्टेन-पेन, यह लो चिट्ठीका कागज, लिखो इस्तीफा। जब तक इसे डाकमें नहीं डलवाऊँगी, मुझे शान्ति नहीं।"

"और शायद मुझे भी शान्ति नहीं मिलनेकी।"

लिख दिया इस्तीफा।

दूसरे ही दिन शर्मिला कलकत्ता चल दी। वहाँ जाकर मथुरा-दादाके घर ठहरी। उसने उलाहनेके स्वरमें कहा, "बहनकी खबर तो कभी लेते

ही नहीं !" कोई स्त्री प्रतिद्वन्द्वी होती तो कहती, 'तुम भी तो नहीं लेतीं।' पुरुषके मगजमें यह जवाब आया ही नहीं। कसूर मान लिया। बोले, "साँस लेने तककी फुरसत नहीं पाता। खुद अपनेको ही भूल गया हूँ, कुछ ध्यान ही नहीं रहता। और, तुमलोग भी तो दूर-दूर रहते हो।"

शर्मिलाने कहा, "मैंने अखबारोंमें देखा था कि मयूरभञ्ज या मथुरागंज कहीं तो एक 'ब्रिज' बन रहा है, उसका काम मिला है तुम्हें। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। उसी वक्त मनमें आई कि खुद जाकर मथुरा-दादाको कांग्रेचुलेट कर आऊँ।"

"जरा सब्र करो, बहन। अभी समय नहीं हुआ।"

बात यह थी कि उस काममें नकद रुपया डालनेकी जरूरत थी। किसी मारवाड़ी धनीके साथ साझेमें काम करनेकी बात थी। अन्तमें गुल खिला कि जिन शर्तोंपर वह काम करना चाहता है उसमें मलाई-मलाई सब उसीके हाथ पड़ेगी ; इनके हिस्सेमें खुरचन रह जायगी,– सो भी तलेकी जली-हुई। इसीसे वे दुविधामें पड़कर पीछे हटनेकी सोच रहे हैं।

शर्मिलाने उतावलीके साथ कहा, "ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। यदि साझेमें ही काम करना है तो हमलोगोंके साथ करो। ऐसा अच्छा काम तुम्हारे हाथसे निकल जाय तो बड़े अफसोसकी बात होगी। मेरे रहते ऐसा हरगिज नहीं हो सकता,– चाहे तुम कुछ भी क्यों न कहो।"

इसके बाद लिखा-पढ़ी होनेमें देर नहीं लगी। मथुरा-दादाका हृदय भी पिघल गया।

रोजगार जोरसे चलने लगा। इसके पहले शशाङ्कने नौकरीका दायित्व लेकर काम किया है और उस दायित्वकी एक सीमा थी। उसमें मालिक थे अपनेसे बाहर, उसमें एकका दावा और दूसरेका देना दोनों बराबरके वजनपर चला करते थे। अब अपना ही प्रभुत्व अपनेको चलाता है। दावा और देना दोनों एक हो गये हैं। ये दिन छुट्टी और कामके ताने-बानेसे बुने-हुए हों, सो बात नहीं ; इनकी बुनावट गफ यानी ठोस है। जो जिम्मेदारी शशाङ्कके मनपर सवार है वह इसलिए और भी ज्यादा कड़ी है कि मनमें

आते ही उसे छोड़ा जा सकता है। और-कुछ नहीं, स्त्रीका कर्ज उसे चुकाना ही है। उसके बाद इतमीनानसे धीरे-सुस्ते चलनेका वक्त मिलेगा। बायें हाथकी कलाईमें घड़ी, सिरपर सोलेका हैट, आस्तीन-चढ़ी-हुई कमीज, खाकी पैन्ट और उसपर चमड़ेका कमरबन्द कसा-हुआ, पैरोंमें मोटे तलेके बूट जूते और आँखोंपर धूपसे बचनेका रंगीन चश्मा चढ़ाकर शशाङ्क जोरोंसे कामपर जुट गया। स्त्रीके कर्जकी नैया किनारे लगना ही चाहती है, मगर फिर भी वह स्टीम नहीं घटाना चाहता,—मन उसका गरम हो उठा है।

इसके पहले घर-गृहस्थीके आमद-खर्चकी धारा एक ही नालेसे बहा करती थी, अब उसकी दो शाखाएँ हो गईं। एक गई बैङ्ककी तरफ और एक घरकी तरफ। शर्मिलाको पहले जितना मिलता था उतना ही अब मिलता है। वहाँके लेन-देनका रहस्य पहलेकी तरह आज भी शशाङ्ककी जानकारीके बाहर है, और कारबारका चमड़ेकी जिल्दवाला मोटा खाता शर्मिलाके लिए दुर्गम दुर्गके सिवा और-कुछ नहीं। इससे कोई हानि नहीं। पर, पतिके व्यापारी जीवनका घर-द्वार शर्मिलाकी घर-गृहस्थीके इलाकेसे बिलकुल बाहर पड़ जानेसे उस तरफसे अकसर उसके नियम-कानूनकी उपेक्षा होने लगी। शर्मिला विनती करके कहती, 'इतनी ज्यादती न करो, तबीयत खराब हो जायगी।' किन्तु कोई नतीजा नहीं निकलता। और ताज्जुब इस बातका है कि तबीयत भी खराब नहीं होती। तनदुरुस्तीकी दुश्चिन्ता, आराम न करनेपर अफसोस, ठीक समय खाने-पीने और सोने-उठनेकी तागीद इत्यादि दाम्पत्य-धर्मके लगभग सभी तकाजोंकी जोरोंके साथ उपेक्षा करके शशाङ्क तड़के ही उठकर अपनी सेकेण्डहैण्ड फोर्ड गाड़ी खुद हाँकता-हुआ निकल जाता, और दो-ढाई बजे घर लौटता। घर आकर खरी-खोटी सुनता और झटपट खाना खाकर फिर कामपर चल देता।

एक दिन उसकी मोटरसे और-किसीकी गाड़ीकी भिड़न्त हो गई। खुद बाल-बाल बच गया, पर गाड़ीको काफी नुकसान पहुँचा। गाड़ी मरम्मतके लिए कारखाने भेज दी। शर्मिला बहुत ही चञ्चल हो उठी; और रुँधे-हुए कण्ठसे बोली, "अब तुम खुद गाड़ी नहीं चला सकोगे।"

शशाङ्कने उसकी बातको हँसीमें उड़ाते-हुए कहा, "पराये हाथकी आफत भी तो ठीक उसी जातकी दुश्मन है।"

एक दिन किसी मरम्मतके कामकी देख-भाल करने गया तो पैकबक्सकी कील जूतेके तलेको पार करके उसके पाँवमें घुस गई। अस्पताल जाकर उसने बैण्डेज कराया और धनुष्टङ्कारसे बचनेका इञ्जेक्शन लेकर वह घर लौटा।

उस दिन शर्मिला रो दी, बोली, "बस, अब कुछ दिन आराम करो।"

शशाङ्कने बहुत ही संक्षेपमें कहा, "काम ?" इससे संक्षेपमें वह कह ही क्या सकता था ?

शर्मिलाने कहा, "लेकिन—"

शशाङ्क बिना कुछ कहे-सुने ही कामपर चल दिया।

शर्मिलाकी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह ज्यादा जोर देकर कोई बात कहे। क्योंकि अपने क्षेत्रमें पुरुषका जोर दिखाई देने लगा है। युक्ति-तर्क और आरजू-मिन्नत इन सबके ऊपर एक ही बात है, 'काम है।' शर्मिला बिना-कारण व्याकुल होकर बैठी रहती। देर होती तो सोचती, 'शायद मोटर टकरा गई होगी।' धूपमें घूमनेकी वजहसे पतिके चेहरेपर सुर्खी देखती तो समझ लेती कि जरूर इन्फ्लुएञ्जा है। डरते-डरते डाक्टरकी बात छेड़ना चाहती, पर पतिका रुख देखकर वहाँकी वहीं रुक जाती। होते होते ऐसा हो गया कि जी खोलकर उद्वेग प्रकट करनेकी हिम्मत भी वह खो बैठी।

शशाङ्कका यह हाल कि देखते-देखते वह घाममें-तड़का तरुना हो गया, स्वभाव हो गया चिड़चिड़ा। ऊँचा तंग कोट, तंग फुर्सत, तेज चाल, बातचीत चिनगारी-सी सक्षिप्त। शर्मिलाकी सेवा उसकी द्रुतलयके साथ ताल मिलाकर चलनेकी भरसक कोशिश करती। स्टोवके पास खाने-पीनेकी कोई-न-कोई चीज उसे हमेशा रखनी पड़ती, कोई ठीक नहीं कि कब अचानक कह बैठें कि 'चल दिया, लौटनेमें देर होगी।' मोटरगाड़ीमें भी सोडा-वाटर और छोटे टीनके डब्बेमें बन्द खुश्क खाना हरदम तैयार रखा रहता। ओडीकोलनकी शीशी हर वक्त ऐसी जगह रखी रहती जहाँ तुरत नजर पड़े। कोई ठीक

नहीं कि कब माथेमें दर्द शुरू हो जाय। गाड़ी वापस आनेपर सब चीजें वह खुद उठाकर देखती कि कोई भी चीज काममें नहीं लाई गई। मन उसका उदास हो जाता। सोनेके कमरेमें धुली-हुई धोती गंजी वगैरह पहननेके कपड़े ऐसी जगह जतनसे तह किये-हुए रखे रहते जहाँ नजर पड़े ही पड़े; फिर भी हफ्तेमें चार-चार दिन कपड़े बदलनेकी उसे फुरसत ही नहीं मिलती। घर-गृहस्थीकी सलाहको इतना छोटा कर देना पड़ा है कि उसकी तुलना जरूरी टेलीग्रामकी ठोकर-मार भाषासे ही हो सकती है, सो भी चलते-चलते पीछेसे यह कहते-हुए कि 'सुनते हो, एक बात तो सुनते जाओ!' उसके रोजगारके साथ शर्मिलाका जो थोड़ा-बहुत सम्बन्ध था, वह था कर्जका, वह भी मय-ब्याजके चुक गया है। ब्याज भी ठीकसे जोड़कर बाकायदा रसीद लेकर दी गई है।

शर्मिलाने कहा, "बाप रे बाप, प्रेममें भी पुरुष अपनेको पूरी तौरसे नहीं मिला सकते! एक जगह खुली छोड़ देते हैं, वहीं उनके पौरुषका अभिमान बना रहता है।"

मुनाफेके रुपयोंसे शशाङ्कने भवानीपुरमें एक मकान खड़ा कर लिया है अपनी तबीयतका। वह उसके शौककी चीज है। स्वास्थ्य, आराम और सिलसिलेके नये-नये प्लैन दिमागमें आ रहे हैं। शर्मिलाको आश्चर्यमें डालनेकी कोशिशमें है वह। शर्मिला भी बाकायदा आश्चर्य-चकित होनेमें कोई बात उठा नहीं रखती। इञ्जीनियरने एक कपड़े धोनेकी मशीन बिठाई, शर्मिलाने उसे चारों तरफसे देखा-भाला और खूब तारीफ की। मन-ही-मन बोली, 'कपड़े आज जैसे धोबीके घर धुलने जाते हैं, कल भी वैसे ही जायेंगे; मैले कपड़ोंके गर्दभ-वाहनको तो समझ लिया है, किन्तु उसका विज्ञान-वाहन नहीं समझमें आता।' आलूके छिलके उतारनेवाली मशीन देखकर दंग रह गई; बोली, "दम-आलू बनानेकी बारह-आना दिक्कत मिट गई।" बादमें सुननेमें आया कि वह फूटी डेगची और केटली वगैरहके साथ किसी अन्धी कोठरीमें पड़ी-पड़ी सड़ रही है।

मकान बनकर जब बिलकुल तैयार हो गया, तब-कहीं उस स्थावर चीजसे शर्मिलाके रुके-हुए स्नेहके उद्यमको छुटकारा मिला। सहूलियत यह थी कि ईंट-काठकी देहमें धैर्य अटल होता है। सामान धरने-उठाने और सजाने-लगानेमें दो-दो नौकर हाँफ उठे, दो-एक काम छोड़कर भी चले गये। कमरोंकी सजावटका काम चल रहा है शशाङ्कके लिए। बैठकमें वह आजकल लगभग बैठना ही नहीं, फिर भी उसीकी थकी-हुई रीढ़को आराम पहुंचानेके लिए तरह-तरहकी फैशनकी कुरसियाँ मँगाई और सजाई जा रही हैं। फूलदानी एक आध नहीं, कमरे-कमरेमें छोटी-छोटी तिपाई और टेबिलोंपर फूलदार झालरदार टेबिलपोश और उनपर फूलशुदा फूलदानी रखी गई हैं। सोनेके कमरेमें दिनमें आजकल शशाङ्कका समागम बन्द है, क्योंकि उसके आधुनिक पञ्चाङ्गमें रविवार सोमवारका यमज भाई बन गया है। और-और छुट्टीके दिन, जब कि काम बिलकुल बन्द रहता है तब भी, न-जाने कहाँसे वह काम ढूंढ़ निकालता है, और आफिस-रूममें जाकर प्लैन बनानेका चिकना कागज या खाता-बही लेकर बैठ जाता है। फिर भी पुराने नियम चालू हैं। मोटे गद्देदार सोफाके सामने मखमलके कामदार स्लीपर रखे रहते हैं। पहलेकी तरह ही पानदानमें पान लगाकर टेबिलपर रख दिये जाते हैं। अलगनीपर सिल्कका कुरता और चुनी-हुई धोती टँगी रहती है। आफिस-रूममें हस्तक्षेप करनेके लिए हिम्मतकी जरूरत है, फिर भी शशाङ्ककी अनुपस्थितिमें शर्मिला झाडन हाथमें लेकर वहाँ घुस जाती है। वहाँ रहने-लायक और न रहने-लायक चीजोंके व्यूहमें सजावट और सिलसिलेका मेल बिठानेमें उसका उद्योग और अध्यवसाय रोके नहीं रुकता।

शर्मिला सेवा बराबर कर रही है, पर उसका बहुत-कुछ पतिके अगोचर ही रह जाता है। पहले उसका जो आत्म-निवेदन था वह था प्रत्यक्षके आगे, तब उसका प्रयोग था प्रतीकमें, उसका निशान बना रहता था घर-द्वार सजानेमें, बगीचेके पेड़-पौधोंमें, जिस कुरसीपर शशाङ्क बैठा करता था उसके रेशमी आवरणमें, तकियोंके गिलाफोंके बेल-बूटेके काममें, आफिस रूमकी टेबिलके एक कोनेमें रखी नीले स्फटिककी फूलदानीमें लगे रजनीगन्धाके गुच्छेमें।

आज अपने अर्घ्यको पूजाकी वेदीसे बहुत दूर रखना पड़ता है, इसका शर्मिलाको बहुत दुःख है; कुछ दिन पहले उसने जो चोट सही है उसके निशान को चुपचाप आँसू बहा-बहाकर धोना पड़ा है उसे। उस दिन कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी थी, शशाङ्ककी वर्षगाँठ थी उस दिन। शर्मिलाके जीवनका सबसे बड़े त्यौहारका दिन था वह। बाकायदा इष्ट-मित्रोंको न्योता दिया गया था, और घर-द्वार फूल-पत्तियोंसे खास तौरसे सजाया गया था।

सवेरेका काम पूरा करके शशाङ्कने घर आकर कहा, "आज बात क्या है! गुड़ेकी शादी है क्या?"

"हाय री तकदीर! आज तुम्हारा जन्म-दिन है, सो भी भूल गये? खैर, आज शामको तुम बाहर नहीं जा पाओगे।"

"बिजनेस मौतके दिनके सिवा और किसी भी दिनके आगे सर नहीं झुकाता।"

"अब आगे कभी नहीं कहूँगी। आज लोगोंको न्योता दे चुकी हूँ।"

"देखो, शर्मिला, तुम मुझे खिलौना बनाकर दुनिया-भरके आदमी बुला कर खेल दिखानेकी आदत छोड़ दो।"—कहकर शशाङ्क तेजीसे वहाँसे चला गया। शर्मिला अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके कुछ देर रो ली।

शामको शशाङ्कके इष्ट-मित्र और शर्मिलाकी सखी-सहेलियाँ आईं। 'बिजनेस'का दावा सभीने आसानीसे मान लिया। अगर यह कालिदासका जन्म-दिवस होता, तो 'शकुन्तला'के तृतीय अङ्क लिखनेकी अपत्तिको लोग जरूर वाहियात बात समझ लेते। पर, यह बिजनेसकी बात ठहरी!

आमोद-प्रमोद काफी हुआ। नीलू बाबूने थियेटरकी नकल दिखाकर सबको खूब हँसाया। शर्मिला भी उस हँसीमें शरीक हुई। शशाङ्क-शून्य शशाङ्कके जन्म-दिनने आज साष्टाङ्ग दण्डवत किया 'बिजनेस'के आगे।

दुःख काफी हुआ, फिर भी शर्मिलाके मनने पतिके दौड़ते-हुए व्यवसाय-रथकी ध्वजाको दूरसे प्रणाम किया। शशाङ्कका व्यवसाय उसकी पहुँचके बाहर है, और वह किसीकी भी खातिर नहीं करता, न स्त्रीके निहोरेकी, न इष्ट-मित्रोंके निमन्त्रणकी और न अपने ऐशो-आरामकी। अपने व्यवसायके

कामपर श्रद्धा करके ही पुरुष अपनेपर श्रद्धा करता है, यह उसका अपनी शक्तिके आगे अपना समर्पण है। शर्मिला अपनी घर-गृहस्थीकी रोजकी कार्य-धाराके इस पार खड़ी-खड़ी बड़े सम्मान और श्रद्धाके साथ उस पारकी ओर देखती रहती है अपने शशाङ्कके अर्थ-पुरुषार्थको। उसकी सत्ता बहुत ही व्यापक है, घरकी चहारदीवारी तोड़कर वह दूर-देश तक चली गई है, सुदूर समुद्रके उस पार। न-जाने कितने परिचित-अपरिचित लोगोंको वह खींच ले आती है अपने शासन-जालमें। अपने भाग्यके साथ पुरुषका रोजमर्राका संघर्ष चल रहा है ; उसके ऊबड़खाबड़ दुर्गम मार्गमें स्त्रियोंका कोमल बाहु-बन्धन अगर रोड़े अटकानेकी कोशिश करता है, तो पुरुष उसे निर्मम तेजीके साथ तोड़कर अलग न कर दे तो क्या करे ? उस मिर्ममताको शर्मिलाने भक्तिके साथ अङ्गीकार कर लिया। बीच-बीचमें उससे रहा नहीं जाता, जहाँ उसका कोई हक नहीं, कोई बस नहीं, वहाँ भी उसके हृदयका खिचाव ले आता है सकरुण उत्कण्ठा, और इससे उसे चोट पहुँचती है। उस चोटको वह प्राप्य समझकर ही व्यथित मनसे राह छोड़कर लौट आती है। देवतासे कहती है, 'तुम देखना !' वहाँ उसकी अपनी गति जो नहीं है, क्या करे वह ?

नीरद

बैङ्कमें-जमा रुपयोंपर सवार होकर इस परिवारकी समृद्धि जिस समय सरपट दौड़ी चला जा रही थी छै-अङ्कोंकी ओर, उस समय शर्मिलाको किसी ऐसी बीमारीने धर दबाया जो समझमें ही न आती थी। उसमें उठने-बैठने तककी शक्ति नहीं रही। उसके बारेमें क्यों इतनी दुश्चिन्ता है, इस बातको जरा खुलासा कर देना ठीक होगा।

राजाराम बाबू थे शर्मिलाके पिता। बरीशालकी तरफ और गङ्गाके मुहानेके आस-पास उनकी बहुत-सी जमींदारी थी। इसके सिवा उनके शेयर थे शालीमार-घाटके जहाज बनानेके एक कारखानेमें। उनका जन्म हुआ था पुराने जमानेके सीमान्त और इस जमानेके शुरूमें। शिकार कुश्ती और लाठी चलानेमें वे थे उस्ताद। पखवाजमें उन्होंने नाम कमाया था। 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस', 'जूलियस सीजर', 'हैमलेट' में से दो-चार पन्ने कण्ठस्थ सुना सकते थे ; मेकलेकी अंगरेजी थी उनके लिए आदर्श, बर्ककी वाग्मिकतापर वे थे मुग्ध, बंगला भाषामें उनकी सीमा थी माइकेलके 'मेघनाद-वध' काव्य तक। अधेड़ उमरमें विलायती शराब पीने और निषिद्ध खाना खानेको वे आधुनिक चित्तोत्कर्षका आवश्यक अङ्ग मानते थे। आखिरी उमरमें सब छोड़-छाड़ दिया था। उनका रहन-सहन और पोशाक थी काफी दुरुस्त, चेहरा सुन्दर गम्भीर और प्रियदर्शन, शरीर लम्बा और बलिष्ठ, मिजाज मजिलिसी, कोई प्रार्थी उनकी शरण देता तो उनसे 'ना' करते नहीं बनता। पूजा-पाठमें निष्ठा नहीं थी, फिर भी उनके घर उसका प्रचलन था समारोहके साथ। समारोहसे कौलिक मान-मर्यादा प्रकट होती, और पूजा होती स्त्रियों तथा और-और लोगोंके लिए। वे चाहते तो आसानीसे 'राजा'-उपाधि प्राप्त कर सकते थे। उदासीनताका कारण पूछनेपर राजाराम हँसके जवाब देते, 'बाप-दादोंकी दी-हुई राजा-उपाधि वे भोग रहे हैं, उसके ऊपर और-किसी उपाधिको जगह देना उस सम्मानको छोटा करना है।' गवर्नमेण्ट-हाउसकी खास ड्योढ़ीमें ससम्मान प्रवेश करनेका उन्हें हक था। सरकारी उच्च

पदाधिकारी अंगरेज उनके घर चिर-प्रचलित जगद्धात्री-पूजामें आते और काफी मिकदारमें 'शैम्पेन'का प्रसाद पाते थे।

शर्मिलाके ब्याहके बाद उनके पत्नी-शून्य घरमें था बड़ा लड़का हेमन्त और छोटी लड़की ऊर्मिमाला। लड़केको कॉलेजके अध्यापक कहा करते थे दीप्तिमान, अंगरेजीमें जिसे कहते हैं 'ब्रीलियण्ट'। उसका चेहरा था घूमकर-देखने-लायक। ऐसा कोई विषय नहीं जिसमें उसकी विद्या परीक्षा-मानके ऊँचेसे ऊँचे मार्क तक न चढ़ी हो। इसके सिवा व्यायामकी उन्नतिमें बापका नाम रखनेकी भावना भी उसके कम प्रबल नहीं थी। यह तो कहना ही फजूल है कि उसके चारों तरफ उत्कण्ठित कन्या-मण्डलीकी परिक्रमा जोरोंसे चल रही थी, पर ब्याहके विषयमें उसका मन तब उदासीन ही था। तब उसका लक्ष्य था युरोपीय विश्वविद्यालयकी ऊँची उपाधि पानेकी ओर। मनमें उस उद्देश्यकी नींव डालकर उसने फ्रान्सीसी और जर्मन भाषा सीखना शुरू कर दिया था।

और-कुछ हाथ न लगनेसे हेमन्तने, अनावश्यक होनेपर भी, कानून पढ़ना शुरू ही किया था कि इतनेमें उसकी आँतमें या शरीरके और किसी यन्त्रमें ऐसी कोई गड़बड़ी पैदा हो गई कि डाक्टरोंसे उसका कुछ करते ही न बना। गोपनचारी रोग उसके सबल शरीरमें इस तरह छिप गया जैसे कोई दुश्मनके हाथ पकड़े जानेके डरसे किलेमें छिप जाता है। उसका पता लगाना जितना कठिन था, उसपर आक्रमण करना भी उतना ही मुश्किल हो गया। उस जमानेके एक अंगरेज डाक्टरपर राजाराम बाबूको बहुत ज्यादा विश्वास था। ऑपरेशन करनेमें उनका काफी नाम था। उन्होंने रोगीकी देहमें खोजका काम शुरू कर दिया। नश्तर लगानेकी आदतकी वजहसे उन्होंने अन्दाज लगाया कि हेमन्तकी देहकी दुर्गम गहराईमें सङ्कटने जड़ पकड़ ली है, उसे जड़से उखाड़ फेंकना ही चाहिए। नश्तर लगाया गया। पूरी चतुराई और सफाईके साथ जो जगह खोलकर देखी गई वहाँ न तो कल्पित दुश्मन ही निकला और न उसका निशान ही मिला। भूल-सुधारका कोई रास्ता ही न रह गया। लड़का मर गया। पर, बापके मनका गहरा दुःख

किसी भी तरह शान्त नहीं होना चाहता। लड़केकी मौतसे उनका कलेजा बैठा सो तो बैठा ही, सबसे ज्यादा चुभने लगा उसके सुन्दर बलिष्ठ शरीरका इस तरह चीड़-फाड़कर विकृत किया जाना। उसकी याद काले खूँखार जानवरके पैने नाखूनकी तरह उनके हृदयको कुरेद-कुरेदकर उसका खून पीती रही, और धीरे-धीरे उन्हें मौतकी ओर घसीटने लगी।

हेमन्तका पहलेका सहपाठी नया पाश-शुदा डाक्टर नीरद मुखर्जी था उसकी तीमारदारीमें। वह शुरूसे ही बराबर जोर दे-देकर कहता रहा कि गलती की जा रही है। हेमन्तकी बीमारीके बारेमें वह एक निर्णयपर पहुँचा था। उसकी सलाह थी कि किसी खुश्क जगह जाकर बहुत दिन रहा जाय तो आराम हो सकता है। पर, राजारामके मनमें अपने पुरखोंका संस्कार जमा बैठा था, और वह अन्त तक अटल बना रहा। उनका खयाल था कि यमदूतके साथ जबरदस्त लड़ाई छिड़नेपर उसका मुकाबला फकत एक अंगरेज डाक्टर ही कर सकता है, वही उसका एकमात्र योग्य प्रतिद्वन्द्वी है। अब, इस दुर्घटनाके बाद नीरदपर उनका स्नेह और विश्वास हदसे ज्यादा बढ़ गया। उनकी छोटी लड़की ऊर्मीको अचानक ऐसा लगा कि इस नये डाक्टरकी प्रतिभा असाधारण है। उसने अपने बापूजीसे कहा, "देखा, बापूजी, इतनी कम उमरमें कितना जबरदस्त आत्म-विश्वास है नीरद बाबूका! इतने बड़े अंगरेज डाक्टरके खिलाफ कितनी दृढ़ताके साथ अपनी राय जाहिर कर दी। साहसकी तारीफ करनी पड़ेगी।"

बापूजीने कहा, "डाक्टरी-विद्या सिर्फ किताबोंकी ही नहीं होती, किसी-किसीमें उसका दुर्लभ दैव संस्कार होता है। नीरदमें वह संस्कार मौजूद है।"

उनकी यह भक्ति शुरू हुई एक छोटे-से प्रमाणसे, शोकके आघातसे, और पश्चात्तापकी वेदनामें वह पनपी, उसके बाद प्रमाणकी सहायताके बिना ही वह बढ़ती गई।

एक दिन राजारामने ऊर्मीसे कहा, "बिटिया, मुझे ऐसा लगता है जैसे हेमन्त मुझे बराबर पुकार-पुकारकर कह रहा हो कि 'बीमारोंका दुःख दूर करो।' मैंने तय किया है, उसके नामपर एक अस्पताल कायम करूँ।"

ऊर्मिमालाने स्वभावसिद्ध उत्साहके साथ कहा, "हाँ, बापूजी, बहुत अच्छा रहेगा। मुझे भेज देना युरोप। वहाँसे डाक्टरी सीखकर मैं खुद अस्पतालका काम सम्हालूँगी।"

बात राजारामके हृदयमें जाकर बैठ गई। बोले, "वह अस्पताल होगा देवोत्तर-सम्पत्ति, तू होगी उसकी सेविका। हेमन्त बड़े दुःखमें गया है, तुझे वह बहुत प्यार करता था, तेरे इस पुण्य-कार्यसे परलोकमें उसे बड़ी शान्ति मिलेगी। उसकी बीमारीमें तैंने तो दिन-रात पास रहकर उसकी सेवा की है, तेरी वह सेवा बराबर बढ़ती ही जायगी।'

इतने बड़े प्रतिष्ठित घरानेकी लड़की डाक्टरी करेगी, यह बात वृद्ध पिताको जरा भी नहीं अखरी। रोगके पंजेसे आदमीको बचाना कितनी बड़ी बात है, इसे आज वे सम्पूर्ण हृदयसे अनुभव कर रहे थे। मानो उनका मन कह रहा हो कि उनका लड़का नहीं बचा, किन्तु, दूसरोंके लड़के बचते रहेंगे तो उससे उन्हींकी क्षति-पूर्ति होगी, उनका शोक हलका होता रहेगा। लड़कीसे बोले, "पहले यहाँकी युनिवर्सिटीकी विज्ञानकी पढ़ाई पूरी हो जाने दे, फिर युरोप जाना।"

अबसे राजारामके मनमें एक बात और चक्कर लगाने लगी; वह है नीरदकी बात। नीरद लड़का सोनेका टुकड़ा है। उसे वे जितना देखते उतना ही वह उन्हें अच्छा लगने लगा। डाक्टरी पास वह कर चुका और अब परीक्षाका रेगिस्तान पार करनेके बाद डाक्टरी-विद्याके सात-समुद्रमें दिन-रात तैरता-हुआ आगे बढ़ रहा है। उमर कम है, फिर भी आमोद-प्रमोद या और-किसी भी बातसे उसका मन डिगता नहीं। नयेसे नये आविष्कारके विषयमें जानकारी हासिल करनेमें वह सदा तत्पर रहता है, नये-नये विषयोंकी खोज और परीक्षा करनेमें वह इतना गरक रहता है कि अपनी प्रैक्टिसके नुकसानका खयाल तक नहीं। जिनकी प्रैक्टिस जोरोंसे चल रही है उन्हें वह अत्यन्त अवज्ञाकी दृष्टिसे देखता है। कहता है, 'मूर्ख लोग कमाते हैं तरक्की, योग्य व्यक्ति प्राप्त करते हैं गौरव।' ये शब्द उसने किसी किताबसे लिये हैं।

अन्तमें एक दिन राजारामने ऊर्मीसे कहा, "मैंने खूब सोच-विचारकर देख लिया, अपने अस्पतालमें तू अगर नीरदकी सङ्गिनी बनकर काम करे, तो काम भी पूरा होगा और मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँगा। उस जैसा लड़का मिलना मुश्किल है।"

राजाराम और चाहे कुछ भी करें, पर हेमन्तके मतकी उपेक्षा नहीं कर सकते। हेमन्त कहा करता था, 'लड़कियोंकी पसन्दगीकी परवाह न करके मा-बापकी पसन्दसे ब्याह करना बर्बरता है। राजारामने किसी एक दिन तर्क उठाया था, "ब्याह असलमें व्यक्तिगत चीज नहीं है, उसके साथ घर-गृहस्थीका पूरा-पूरा सम्बन्ध है, इसलिए ब्याह सिर्फ इच्छाके द्वारा नहीं बल्कि अनुभवके द्वारा सम्पन्न होना चाहिए।" तर्क चाहे वे कैसा ही करें और अभिरुचि उनकी चाहे जैसी भी हो, हेमन्तपर उनका स्नेह इतना गहरा है कि उसीकी इच्छाने इस घरमें विजय पाई।

नीरद मुखुर्जीका इस घरमें बहुत दिनोंसे आना-जाना है। हेमन्तने उसका नाम रखा था 'आउल' यानी उल्लू। कोई इसके अर्थकी व्याख्या करनेको कहता तो वह जवाब देता, "नीरद पौराणिक आदमी है, माइथॉलॉजिकल; उसके उमर नहीं है, सिर्फ विद्या है; इसीसे, मैं उसे मिनर्वाका वाहन कहता हूँ।"

नीरद इनके घर कभी-कभी चाय पीने आया करता था। तब हेमन्तके साथ उसकी जोरोंकी बहस चला करती थी। भीतर ही भीतर ऊर्मीकी तरफ उसका ध्यान गया है, पर ऊपरसे नहीं। इसकी वजह यह थी कि इस विषयमें यथोचित व्यवहार उसके स्वभावमें ही नहीं है। वह आलोचना कर सकता है, आलाप करना नहीं जानता। यौवनका उत्ताप उसमें हो तो हो भी सकता है, पर उसका उजाला उसमें बिलकुल नहीं है। इसीलिए, जिन युवकोंमें यौवन काफी प्रकाशमान है उनकी अवज्ञा करनेमें उसे खुशी हासिल होती है; और इन्हीं सब कारणोंसे लोगोंने उसे ऊर्मीके उम्मीदवारोंमें गिननेकी हिम्मत नहीं की। और मजा यह है कि उसकी वह समझी-

जानेवाली निरासक्ति ही मौजूदा कारणोंके साथ मिलकर नीरदके प्रति ऊर्मीकी श्रद्धाको साम्मानकी सीमा तक खींच लाई थी।

राजारामने जब साफ-साफ कह दिया कि लड़कीके मनमें अगर किसी तरहकी दुबिधा न हो तो नीरदके साथ उसका ब्याह कर देनेमें वे खुश ही होंगे तब लड़कीने अनुकूल इशारेसे ही सिर हिला दिया। उसके साथ सिर्फ इतना और जता दिया कि इस देशकी और विलायतकी शिक्षा पूरी करनेके बाद ब्याह होगा। बापने बेटीसे कहा, "यही ठीक है। पर आपसमें एकराय होकर सम्बन्ध तय हो जाय तो फिक्रकी कोई बात न रहेगी।"

नीरदकी सम्मति पानेमें देर नहीं लगी, यद्यपि उसके भावसे यही प्रकट हुआ कि विवाह-बन्धन वैज्ञानिकके लिए एक प्रकारका त्याग ही है, लगभग आत्मघात ही समझना चाहिए उसे। शायद, इसकी क्षतिपूर्तिके तौरपर, यानी आनेवाले सङ्कटको कुछ कम करनेकी गरजसे यह शर्त तय हुई कि पढ़ाई-लिखाई तथा और-सभी विषयोंमें नीरद ही ऊर्मीका चालक रहेगा; इसके मानी यह कि नीरद अपनी भावी पत्नीको धीरे-धीरे अपने हाथसे गढ़के तैयार करेगा। वह भी होगा वैज्ञानिक तरीकेसे, दृढ़ नियन्त्रित कायदोंमें, लैबोरेटरी की सही प्रक्रियाके ढगपर।

नीरदने ऊर्मीसे कहा, "पशु-पक्षी प्रकृतिके कारखानेसे निकले हैं बिलकुल तैयार चीज बनकर। मगर आदमी है कच्चा मसाला। खुद आदमीपर ही उसकी जिम्मेवारी है ठीक गढ़के बनानेकी।"

ऊर्मीने नम्रताके साथ कहा, "अच्छी बात है, परीक्षा कर लीजियेगा। कोई अड़चन न होगी।"

नीरदने कहा, "तुम्हारे अन्दर शक्ति बहुत तरहकी है। उन्हें अपने जीवनके एकमात्र लक्ष्यके चारों तरफ बाँध रखना होगा। तभी तुम्हारा जीवन होगा सार्थक। विक्षिप्तको संक्षिप्त करना होगा एक अभिप्रायके अन्दर लाकर। जब वह कसा-हुआ ठोस हो जायगा, डाइनैमिक हो जायगा, तभी उस एकताको कहा जा सकता है मॉरल ऑर्गैनिज्म।"

ऊर्मीने पुलकित होकर सोचा कि बहुतेरे नौजवान उसकी चायकी

टेबिलपर और टेनिस-कोर्टमें आये हैं, पर विचारने-लायक बात उनमेंसे किसी ने नहीं कही ; बल्कि दूसरा कोई कहता है तो वे उबासी लिया करते हैं। विषय चाहे जो भी हो, उसपर अत्यन्त गम्भीरतासे बात करनेका एक निराला ढंग है नीरदमें। वह कुछ भी क्यों न कहे, ऊर्मीको ऐसा लगता कि उसमें एक आश्चर्यजनक तात्पर्य है, बहुत ही ज्यादा इण्टेलेक्चुअल, अत्यन्त बौद्धिक।

राजारामने अपने बड़े दामाद शशाङ्कको बुलवाया। बीच-बीचमें वे उसे निमन्त्रण देकर कोशिश करने लगे कि दोनोंमें अच्छा मेलजोला हो जाय।

शशाङ्क कहता, "लड़केमें बुजुर्गी बहुत ज्यादा आ गई है। समझता है हम सब उसके छात्र हैं, और सो भी पीछेकी बेञ्चके एक कोनेमें बैठे-हुए।"

शर्मिला हँसके कहती, "यह तुम्हारी 'जेलसी' है। मुझे तो बहुत अच्छा लगता है वह।"

शशाङ्क कहता, "छोटी बहनके साथ जगह-बदली कर लो तो कैसा!"

शर्मिला कहती, "तुम तो छुट्टी पा ही जाओ! मेरी बात छोड़ दो।"

शशाङ्कके प्रति नीरदका भी भ्रातृ-भाव बढ़ रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह मन-ही-मन कहता है, 'वह तो मजदूर है, वैज्ञानिक थोड़े ही है। हाथ हैं उसके, मगज कहाँ है?'

शशाङ्क अकसर अपनी सालीसे नीरदके विषयमें मजाक किया करता है। कहता है, "अब पुराना नाम बदल डालनेका समय आ गया।"

"अंगरेजी कायदेसे?"

"नहीं, विशुद्ध संस्कृत-पद्धतिसे।"

"नया नाम क्या रखना चाहते हो, सुनूं भी तो!"

"विद्युल्लता। नीरदको भी पसन्द आयेगा। लैबोरेटरीमें इस चीजके साथ उसका परिचय है ; और अब वह हरदम घरमें बँधी रहेगी।"

और मन-ही-मन कहता, 'सचमुच यह नाम इसे ठीक फबता भी है।' भीतरसे उसका मन हाय-हाय भी कर उठता, 'हाय, इतने बड़े प्रिग (दम्भी) के हाथमें जा पड़ी ऐसी लड़की!' किसके साथ पड़नेसे शशाङ्ककी रुचिको सन्तोष और सान्त्वना मिलती, यह कहना कठिन है।

थोड़े दिन बाद राजारामका देहान्त हो गया। और फिर ऊर्मीके भावी स्वत्वाधिकारी नीरदनाथने उसे अपने मन-माफिक गढ़नेकी साधना एकाग्र चित्तसे शुरू कर दी।

ऊर्मिमाला देखनेमें जितनी अच्छी है उससे भी बढ़कर वह दीखती अच्छी है। उसकी चञ्चल देहपर मनकी उज्ज्वलता चमकती रहती है। हरएक विषयमें उसकी उत्सुकता है। विज्ञानमें जितना मन लगता है, साहित्यमें उससे ज्यादा ही लगता होगा, कम नहीं। मैदानमें फुटबॉल देखने जानेमें उसका बेहद आग्रह रहता, और सिनेमा देखनेको भी वह बुरी बात नहीं समझती। प्रेसीडेन्सी-कालेजमें बिलायतसे एक फिजिक्सका व्याख्याता आया है,–उसकी सभामें भी वह हाजिर पाई जाती। रेडिओ भी सुनती है, कभी-कभी कह देती है, 'वाहियात', पर कुतूहल बना ही रहता। रास्तेमें कोई बाजे-गाजेके साथ बारात निकलती तो फौरन दौड़कर वह बरण्डेमें पहुँच जाती। बार-बार चिड़ियाघर घूमने जाती, वहाँ उसे अच्छा लगता, खासकर बन्दरोंके सोंखचोंके सामने खड़े होनेमें। उसके बाप जब कहीं मछली पकड़ने जाते तो वह उनके पास बैठी रहती। टेनिस खेलती है, और बैडमिण्टन खेलनेमें तो वह पूरी होशियार है। यह सब उसने अपने भाईसे सीखा था। छरहरे बदनकी प्रतिक्षण बढ़नेवाली लता-सी है वह, जरा-सी हवा लगते ही झूमने लगती है। साज-पोशाक सीधी-सादी और साफ-सुथरी सुघड़। वह जानती है कि किस तरह साड़ीको यहाँसे-वहाँसे खींच-खाँचकर, घुमा-फिराकर, कहीं जरा ढील देकर और कहीं जरा कसके कैसे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाई जाती है, और साथ ही उसके रहस्यको भी नहीं समझा जा सकता। गाना अच्छा नहीं जानती, पर सितार बजाती है। वह सङ्गीत देखनेका है या सुननेका, कौन जाने! मालूम होता है उसकी शरारती उँगलियाँ शोर मचाया करती हैं। बात करनेमें वह कभी पीछे नहीं रहती, न हँसनेके लिए उसे संगत कारणकी बाट ही देखनी पड़ती है। साथ देनेकी उसमें असीम शक्ति है; जहाँ वह रहती है वहाँकी सँधको वह अकेली ही भर देती है। सिर्फ नीरदके आगे ही वह बिलकुल बदल जाती है; तब मालूम होता है

यह वह नहीं है। पालवाली नावकी तब हवा हो जाती है बन्द, फिर वह रस्सेके खिंचावसे नम्र-मन्थर गतिसे चलने लगती है।

सभी कहते हैं कि ऊर्मीका स्वभाव उसके भाई-जैसा ही सहृदयतापूर्ण है, वह अपने भाई-जैसी ही जिन्दादिल है। और ऊर्मी जानती है कि उसके भाईने उसके मनको मुक्त कर दिया था। हेमन्तका कहना था कि 'हमारे घर क्या हैं मूर्ति ढालनेके साँचे हैं, मिट्टीके खिलौने बनाना ही उनका काम है, इसीसे तो इतने दिनोंसे विलायती जादूगर इतनी आसानीसे तेतीस करोड़ खिलौनोंको नचाते रहे हैं।' वह कहा करता था कि 'जब मेरा वक्त आयेगा तो इस सामाजिक मूर्ति-गठनको तोड़नेके लिए मैं कालापहाड़ी करने निकल पड़ूंगा।' वह वक्त नहीं आया ; किन्तु ऊर्मीके मनको वह अत्यन्त सजीव बनाकर छोड़ गया है।

बस, यही हो गई मुसीबन। नीरदकी कार्यपद्धति अत्यन्त नियमबद्ध है, घड़ीके काँटेकी तरह। ऊर्मीके लिए उसने पाठ्य-विषयकी तरह कुछ बँधे-हुए नियम बना दिये, और उपदेशके तौरपर उससे कहा, "देखो, ऊर्मी, राह चलते-चलते मनको बार-बार छलकने न देना! नहीं तो, मंजिलपर पहुँचने तक घड़ेमें कुछ भी नहीं बचेगा!"

वह कहा करता है, "तितलीकी-सी हालत है तुम्हारी, चञ्चल होकर घूमती-फिरती हो,—कुछ भी संग्रह नहीं करतीं। तुम्हें बनना चाहिए मधुमक्खी। प्रत्येक क्षणका हिसाब रखना चाहिए तुम्हें। जीवन असलमें विलासिना नहीं है।"

नीरदने फिलहाल इम्पीरियल लाइब्रेरीसे शिक्षा-तत्त्वकी किताबें मँगा कर पढ़ना शुरू कर दिया है, उनमें इसी तरहकी बातें लिखी हैं। उसकी भाषा किताबोंकी भाषा है, क्योंकि उसकी अपनी सहज-स्वाभाविक भाषा नहीं है। ऊर्मीको सन्देह न रहा कि वह अपराधी है। उसका व्रत महान है, उस व्रतको भूलकर बात-बातमें उसका मन जो इधर-उधर चला जाता है उससे बार-बार वह अपनेको ही लाञ्छित करती रहती है। सामने दृष्टान्त मौजूद है नीरदका ; कैसी आश्चर्यजनक दृढ़ता है उसमें, कैसा एकाग्र लक्ष्य

है, सब तरहके अमोद-प्रमोदके खिलाफ कैसी कठोर विरुद्धता है उसके अन्दर। ऊर्मीकी टेबिलपर कहानी-उपन्यास या हलके साहित्यकी कोई किताब देखते ही नीरद उसे जब्त कर लेता है। एक दिन शामको वह ऊर्मीकी तहकीकात करने आया तो सुना कि वह अंग्रेजी नाट्यशालामें सलिवैनके मिकाडो आपेरा का सान्ध्य अभिनय देखने गई है। भाईके रहते-हुए ऊर्मीको ऐसे मौके अक्सर मिला करते थे। उस दिन नीरदने उसे काफी डाटा-फटकारा। अत्यन्त गम्भीर स्वरमें अंग्रेजी भाषामें उसने कहा था, "देखो, तुमने अपने भाई साहबकी मृत्युको अपना सम्पूर्ण जीवन देकर सार्थक करनेका भार लिया है। और अभीसे तुमने उस बातको भूलना शुरू कर दिया!"

सुनकर ऊर्मीको बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा, 'इस शख्सकी कैसी असाधारण अन्तरदृष्टि है! मेरी शोक-स्मृतिकी प्रबलता सचमुच ही घटती जा रही है, मैं खुद इस बातको न जान सकी। धिक् है मुझे, मेरे चरित्रमें इतनी चञ्चलता!' ऊर्मी सावधान होने लगी, अपने पहननेके कपड़ों तकसे उसने शोभाका आभास दूर कर दिया। बगैर रंगकी मोटी साड़ी पहनने लगी वह। ड्रावरमें मौजूद रहनेपर भी चाकलेट खानेका लोभ उसने छोड़ दिया। ढीले मनको खूब कसके बाँधना शुरू कर दिया संकीर्ण चहार-दीवारीके भीतर, सूखे कर्तव्यके खूँटेसे। उसकी जीजी उसका तिरस्कार किया करती। और शशाङ्क नीरदके लिए ऐसे-ऐसे पैने विशेषणोंकी वर्षा करता रहता जो खास विलायती होते और सुननेमें जरा भी मीठे नहीं लगते।

एक जगह शशाङ्कके साथ नीरदका मेल था। शशाङ्कका गाली देनेका आवेग जब तीव्र हो उठता तब उसकी भाषा हो जाती है अंगरेजी, और नीरदका उपदेश जब बहुत ऊँचे दरजेका होता तब उसकी वाहिका हो जाती अंगरेजी। नीरदको सबसे ज्यादा बुरा लगता है ऊर्मीका निमन्त्रण-आमन्त्रण में अपनी जीजीके घर जाना। सिर्फ वह जाती ही नहीं, जानेके लिए पूरा आग्रह रखती है। असलमें उनलोगोंके साथ ऊर्मीका जो रिश्ता है वह नीरदके सम्बन्धको खण्डित करता है।

नीरदने गम्भीर मुँह बनाकर एक दिन ऊर्मीसे कहा, "देखो, ऊर्मी, तुम

मनमें कुछ खयाल न करना। क्या किया जाय, तुम्हारे सम्बन्धमें मेरी एक जिम्मेदारी है, इसीसे कर्तव्य समझकर अप्रिय बात कहनी पड़ती है। मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ, शशाङ्क बाबूके घर जाकर हमेशा उन लोगोंसे मिलना-जुलना तुम्हारे चरित्रके लिए अस्वास्थ्यकर है। रिश्तेदारोंके मोहमें तुम अन्धी हो रही हो, पर, तुम्हारी दुर्गतिकी सम्भवना उसमें स्पष्ट दिखाई दे रही है।"

'ऊर्मीका चरित्र' कहनेसे जिस चीजका ज्ञान होता है उसका पहला बन्धकी दस्तावेज नीरदके ही सन्दूकमें बन्द है ; उस चरित्रमें कहीं भी कुछ हेरफेर होनेसे नीरदका ही नुकसान है। उसके मनाही कर देनेसे ऊर्मीका भवानीपुर जाना तरह-तरहके बहानोंसे प्रायः बन्द-सा हो गया। ऊर्मीका यह आत्म-अनुशासन बड़े-भारी कर्ज चुकानेके समान था। उसके जीवनकी जिम्मेवारी लेकर नीरदने जो हमेशाके लिए अपनी साधनाको भाराक्रान्त कर रखा है, विज्ञान-तपस्वीके लिए इससे ज्यादा आत्म-अपव्यय और क्या हो सकता है!

तरह-तरहकी दिलचस्प बातोंके आकर्षणसे मनको रोक-थामकर वश करनेमें जो कष्ट है वह तो ऊर्मीको बरदाश्त हो चला, मगर फिर भी उसके मनमें रह-रहकर ऐसी एक गहरी वेदना सी उठती है जिसे वह चञ्चलता समझकर पूरी तरह दबा नहीं सकती। नीरद उसे सिर्फ चलाता ही है, किन्तु एक क्षणके लिए भी उसकी वह साधना क्यों नहीं करता? उस साधनाके लिए ऊर्मीका मन बराबर इन्तजार किया करता है, और उस साधनाके अभावमें ही उसके हृदयका माधुर्य पूर्ण विकासकी ओर नहीं बढ़ पाता, उसका सारा कर्तव्य निर्जीव और नीरस हो जाता है। एक-एक दिन अचानक उसे ऐसा लगता है कि नीरदकी आँखोंमें आवेश आने लगा है, अब देर नहीं, उसके हृदयका गभीरतम रहस्य अभी पकड़ाई देता है। किन्तु अन्तर्यामी ही जानते हैं, उस गभीर वेदनाका अस्तित्व नीरदके अन्दर अगर कहीं हो भी, तो उसकी भाषा उसे नहीं मालूम। उसे वह कहकर जाहिर नहीं कर सकता; और इसीसे कहनेकी इच्छाको वह दोष दिया करता है।

विचलित चित्तको गूँगा रखकर ही वह चला आता है और इसे वह अपनी शक्तिका परिचय मानकर गर्व करता है। कहता है, 'सेण्टिमेण्टैलिटी (भावुकता) लाना मेरा काम नहीं।' ऊर्मीको उस दिन रोनेकी इच्छा हुई ; पर, ऐसी उसकी दशा कि भक्तिके साथ समझ बैठी, इसीका नाम वीरता है। अपने कमजोर मनको फिर वह और भी निष्ठुरताके साथ सता-सताकर मारने लगी। पर, चाहे वह कितनी ही कोशिश क्यों न करे, बीच-बीचमें यह बात उसके मनमें स्पष्ट हो ही उठती कि किसी दिन जबरदस्त शोकमें डूब कर जिस कर्तव्यको उसने अपनी इच्छासे ग्रहण किया था, आज अपनी उस इच्छाको कमजोर होते देख वह दूसरेकी इच्छाको ही जोरसे छातीसे चिपकाये ले रही है।

नीरद उससे साफ-साफ कहता, "देखो, ऊर्मी, इतना तुम जान रखो कि साधारण स्त्रियाँ पुरुषोंसे जिन सब स्तुतियोंकी उम्मीद रखती हैं, मुझसे उनकी उम्मीद करना बिलकुल ही फजूल है। मैं तुम्हें जो कुछ भी दूँगा वह इन सब बनावटी बातोंसे कहीं ज्यादा सही और सच्चा होगा, उसकी कीमत बहुत ज्यादा है।"

सुनकर ऊर्मी सिर झुकाये चुपचाप बैठी रहती ; और मन-ही-मन कहती, 'इनसे क्या कोई भी बात छिपी न रहेगी !'

ऊर्मीसे किसी भी तरह मनको बाँधते नहीं बनता। छतपर वह अकेली घूमने चली जाती है। तीसरे पहरका उजाला धीरे-धीरे धुँधला होने लगता है। शहरके ऊँचे-नीचे नाना आकारके मकानोंकी चोटियोंको पार करके दूर गङ्गाके घाटोंपर लगे-हुए जहाजोंके मस्तूलोंके उस पार सूरज डूबने लगता है। नाना रंगोंके बादलोंकी लम्बी-लम्बी रेखाएँ दिनकी प्रान्त-सीमामें दीवार-सी खड़ी दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे वह दीवार भी बिला जाती है। गिर्जाकी चोटीके ऊपर चाँद दिखाई देने लगता है। धुँधले प्रकाशमें शहर स्वप्न-सा मालूम होने लगता है, जैसे कोई अलौकिक मायापुरी हो ! उसके मनमें सवाल उठता है, 'सचमुच ही क्या ऐसा अविचलित, ऐसा कठिन होना चाहिए ? वह क्या इतना कंजूस है ? न तो छुट्टी देगा, न देगा रस !'

अचानक ऊर्मीका मन उन्मत्त हो उठता है। तबीयत चलती है कोई एक जबरदस्त शरारत करनेको। उसका मन चिल्लाकर कहना चाहता है, 'मैं यह सब कुछ नहीं मानती।'

ऊर्मिमाला

नीरदने रिसर्चका जो काम हाथमें लिया था वह पूरा हो गया। यूरोप की किसी वैज्ञानिक-समितिको उसने अपना लेख भेज दिया। उनलोगोंने तारीफ की, और उसके साथ एक स्कॉलरशिप भी दी। उसने तय किया कि वहाँकी डिग्री लेनेके लिए वह विलायत जायगा।

ऊर्मीसे विदा लेते वक्त नीरदने करुण-रसकी कोई बात ही नहीं कही। सिर्फ यही बात उसने बार-बार कही, "मैं जा रहा हूँ, अब मुझे सिर्फ यही आशङ्का हो रही है कि तुम अपने कर्तव्य-पालनमें शिथिलता करोगी।"

ऊर्मीने कहा, "आप जरा भी फिकर न कीजिये।"

नीरदने कहा, "कैसे तुम्हें चलना होगा, कैसे पढ़ना होगा, इसका मैं विस्तृत ब्योरा लिखे देता हूं।"

ऊर्मीने जवाब दिया, "मैं ठीक उसीके अनुसार चलूँगी।"

"लेकिन मैं तुम्हारी आलमारीकी इन किताबोंको अपने घर ले जाकर बन्द करके रख जाना चाहता हूँ।"

"ले जाइये।"—कहकर ऊर्मीने चाभी उसके हाथ सौंप दी।

सितारपर एक बार नीरदकी नजर पड़ी, पर दुबिधामें पड़कर वह रुक गया।

अन्तमें महज कर्तव्यके लिहाजसे नीरदको कहना ही पड़ा, "मुझे सिर्फ एक बातका डर है, शशाङ्क बाबूके यहाँ अगर फिर बार-बार तुम्हारा जाना-आना होता रहा, तो जरूर तुम्हारी कर्तव्य-निष्ठा शिथिल हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं। इससे तुम यह न समझ लेना कि मैं शशाङ्क बाबूकी बुराई

कर रहा हूँ। वे बहुत ही अच्छे आदमी हैं। व्यवसायके क्षेत्रमें ऐसा उत्साह और ऐसी बुद्धि बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है। उनमें सिर्फ एक ही दोष है, वे किसी आदर्शको ही नहीं मानते। मैं तुमसे सच कहता हूँ, उनके विषयमें अकसर मुझे डर लगा रहता है।"

इसके बाद फिर तो शशाङ्कके और-भी अनेक दोषोंका जिक्र छिड़ गया, और उसका नतीजा यह हुआ कि नीरदसे अपने मनकी एक खास दुश्चिन्ता को जाहिर किये बिना न रहा गया; उसने कहा, "जो दोष आज दबे-ढके पड़े हैं वे उमरके साथ-साथ एक-एक करके प्रबलरूपमें जाहिर होते रहेंगे।" किन्तु फिर भी, इस बातको वह मुक्त कण्ठसे मंजूर करता है कि वे आदमी बहुत अच्छे हैं, इसमें शक नहीं। मगर साथ-साथ वह यह भी कहना चाहता है कि उनकी सङ्गतसे, उस घरकी आब-हवासे अपनेको बचाये रखना ऊर्मीके लिए अत्यन्त आवश्यक है। ऊर्मीका मन अगर उनलोगोंके मनकी सतहमें उतर गया तो उससे उसका अधःपतन ही होगा।

ऊर्मीने कहा, "आप क्यों इतने परेशान हो रहे हैं!"

"क्यों हो रहा हूँ, सुनोगी? नाराज तो न होगी?"

"सच बात सुननेकी शक्ति आपसे ही पाई है मैंने। मैं मानती हूँ कि यह आसान काम नहीं, फिर भी बरदाश्त मैं कर सकती हूँ।"

"तो कहता हूँ, सुनो। तुम्हारे स्वभावके साथ शशाङ्क बाबूके स्वभाव में एक जबरदस्त मेल है, इस बातका मैंने खूब अध्ययन किया है। उनका मन बिलकुल हलका है, और वही तुम्हें अच्छा लगता है। ठीक है कि नहीं बताओ?"

ऊर्मी सोचने लगी, 'यह सर्वज्ञ है क्या? मनकी बारीकसे बारीक बातको चटसे समझ जाता है!' निस्सन्देह उसके 'जीजाजी' उसे बहुत अच्छे लगते हैं। इसकी खास वजह यह है कि शशाङ्क 'हाः हाः' करके हँस सकता है, ऊधम और हँसी-मजाक करना आता है उसे। और इस बातको भी वह सही-सही जानता है कि कौनसा फूल और किस रंगकी साड़ी ऊर्मी को पसन्द है।

ऊर्मीने कहा, "हाँ, मुझे वे अच्छे लगते हैं, यह बात सच है।"

नीरदने कहा, "शर्मिला-दीदीका प्रेम स्निग्ध है, गंभीर है। उनकी सेवा एक तरहका पुण्य-कार्य है, वे कर्तव्यसे कभी छुट्टी नहीं लेतीं। उन्हींके प्रभावसे शशाङ्क बाबूने एकाग्र मनसे काम करना सीखा है। पर, जिस दिन तुम भवानीपुर जाती हो उस दिन मानो उनका नक़ली-चेहरा उतर जाता है, तुमसे छेड़छाड़ हँसी-ठठोली करनेमें वे यहाँ तक उतर आते हैं कि कभी जूड़ा खोलकर बाल बिखेर देते हैं तो कभी पढ़नेकी किताब छीनकर आलमारीके ऊपर फेंक देते हैं। टेनिस खेलनेका उनका शौक अचानक ऐसा प्रबल हो उठता है कि जरूरीसे जरूरी काम छोड़कर तुम्हारे साथ खेलने चल देते हैं।"

ऊर्मीको मन-ही-मन मानना ही पड़ा कि जीजाजी इतना ऊधम करते हैं तभी तो वे उसे अच्छे लगते हैं। उसका अपना बचपन उनके पास जाते ही लहरें लेने लगता है। वह भी उनपर कम जुल्म नहीं करती। उसकी जीजी उन दोनोंका ऊधम देखकर सिर्फ स्निग्ध हँसी हँस देती हैं। कभी-कभी मुलायम ढंगसे तिरस्कार भी करती हैं, पर वह असलमें तिरस्कार नहीं, उसका बहाना मात्र है।

नीरदने अन्तमें उपसंहारके तौरपर कहा, "जहाँ तुम्हारे अपने स्वभावको छूटपट्टी न मिले ऐसी जगह तुम्हें रहना चाहिए। मैं पास रहता तो कोई चिन्ता न थी, क्योंकि मेरा स्वभाव तुमसे बिलकुल उलटा है। तुम्हारा मन रखनेके लिए तुम्हारे मनको ही मिट्टी कर देना, यह काम मुझसे हरगिज नहीं हो सकता।"

ऊर्मीने सिर झुकाये हुए कहा, "आपकी बात मैं हरदम याद रखूँगी।"

नीरदने कहा, "मैं कुछ किताबें तुम्हारे लिए रखे जाता हूँ। उनके जिन-जिन चैप्टरोंमें मैंने निशान लगा दिये हैं उन्हें खास तौरसे पढ़ना और मनन करना,—आगे चलकर बहुत काम देगा।"

ऊर्मीके लिए इस सहायताकी जरूरत थी। क्योंकि इधर कुछ दिनोंसे उसके मनमें अकसर सन्देह उठा करता है कि शायद शुरू-शुरूके उत्साहमें

आकर वह गलती कर बैठी है। शायद डाक्टरी उसके स्वभावके खिलाफ पड़ेगी।

नीरदकी लाई-हुई निशान-शुदा किताबें उसके मनके लिए कड़े बन्धनका काम देंगी, उसके मनकी नैयाको बहावके खिलाफ खींचकर वे उसे ठीकसे पार लगा देंगी।

नीरद विलायत चला गया। ऊर्मीने अपने ऊपर और भी कठोर जुल्म करना शुरू कर दिया। ठीक वक्तपर वह कालेज जाती है, और बाकी बचे समयमें अपनेको बिलकुल जनानखानेमें बन्द कर रखती है। दिन-भर कालेजमें पढ़ाई-लिखाई करनेके बाद शामको घर लौटकर उसका थका-हुआ मन छुट्टी पानेके लिए जितना ही व्याकुल हो उठता उतना ही वह अपनेको अध्ययनकी जञ्जीरोंसे जकड़कर कैद कर रखना चाहती। पढ़ना आगे नहीं बढ़ता, एक ही पन्नेपर नजर और मन बार-बार व्यर्थ घूमता-फिरता रहता, फिर भी हार नहीं मानना चाहती। नीरद यहाँ मौजूद नहीं, और इसीसे उसकी दूरवर्ती इच्छा-शक्ति मानो उसपर जोरोंसे काम करने लगती।

ऊर्मीके मनमें अपने ऊपर सबसे बढ़कर धिक्कारका भाव तब पैदा होता है जब काम करते-करते पहलेके दिनोंकी याद बार-बार उसके मनमें घूम-फिरकर झाँकने लगती है। युवकोंके दलमें उसके भक्त बहुत थे। उन दिनों किसीकी उसने उपेक्षा की है तो किसीके प्रति उसका झुकाव भी हुआ है। उसका प्रेम तब पूरा पनपा नहीं था; तब तो सिर्फ प्यार करनेकी इच्छा ही उसके मनमें वसन्तकी मन्द-मन्द बयारकी तरह घूमा-फिरा करती थी। इसीसे तब वह मन-ही-मन गुनगुनाकर गीत गाया करती थी। अपनी पसन्दकी कविताएँ कापीमें लिख रखती, और मन जब बहुत ही उतावला हो उठता तब वह सितार बजाने लगती। आजकल एक-एक दिन ऐसा हो जाता है कि शामको जब वह कोई किताब खोलकर पढ़ने बैठती तो अचानक चौंककर देखती, उसके मनके अन्दर ऐसे किसी दिनकी और ऐसे किसी आदमीकी तसवीर घूम रही है जिस दिनको और जिस आदमीको पहले

कभी भी उसने कोई स्थान नहीं दिया, यहाँ तक कि उस आदमीके लगातार आग्रहने उस दिन उसमें नफरत पैदा कर दी थी। आज शायद उसका वह आग्रह उसके भीतरकी अतृप्त वेदनाको छू-छू जाता है, तितलीके क्षणिक और हलके पर जैसे फूलको वसन्तका स्पर्श दे जाते हैं।

इन सब विचारोंको वह जितनी तेजीके साथ अपने मनसे दूर कर देना चाहती है उतनी ही तेजीसे वे लौटकर उसके मनमें चक्कर लगाते रहते हैं। अपने डेस्कपर उसने नीरदकी एक तसवीर रख छोड़ी है। उसकी तरफ वह एकटक देखती रहती है। उसके चेहरेपर बुद्धिकी दीप्ति है, पर आग्रहका चिह्न नहीं। उसे वह अपने पास बुलाना ही नहीं तो उसका मन जवाब दे किसे? मन-ही-मन वह बराबर यह जपा करती है, 'कैसी प्रतिभा है, कैसी तपस्या है, कैसा निर्मल चरित्र है, कैसा अचिन्त्य सौभाग्य है!'

एक विषयमें नीरदकी जीत हुई है, यह कह देना भी जरूरी है। नीरद के साथ ऊर्मीका सम्बन्ध तय हो जानेपर शशाङ्क तथा और-भी दस-बीस सन्दिग्ध-चित्त लोग व्यङ्गकी हँसी हँसते थे। कहते थे कि 'राजाराम बाबू सीधे-सादे आदमी ठहरे, समझ बैठे हैं नीरद आदर्शवादी युवक है! उसका आदर्शवाद जो ऊर्मीके रुपयोंकी थैलीमें छुपा-छुपा अण्डे दे रहा है, इस बातको क्या लम्बे-लम्बे साधु-वाक्योंसे ढका जा सकता है! अपनेको सक्रिफाइस (त्याग) वह जरूर कर रहा है, पर जिस देवताके लिए उसका यह त्याग है उसका मन्दिर है इम्पीरियल बैङ्कमें। हमलोग सीधे तरीकेसे ससुरको जाकर कहते हैं, रुपये चाहिए, रुपये उनके बट्टे-खाते नहीं जायेंगे, उन्हींकी लड़कीकी सेवामें खर्च होंगे। नीरद ठहरा महान् पुरुष, वह कहता है, महान् उद्देश्यके खातिर ही ब्याह करेगा! उसके बाद उस उद्देश्यका अनुवाद किया करेगा ससुरके चेकोंपर!

नीरद जानता था कि ऐसी चर्चा होना अनिवार्य है। उसने ऊर्मीसे कहा था, "मेरे ब्याह करनेमें एक शर्त रहेगी, तुम्हारे रुपयोंमेंसे मैं एक पैसा भी न छुऊँगा, अपनी कमाई ही मेरा एकमात्र अवलम्बन रहेगा। ससुरने खुद उसे युरोप भेजनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु वह किसी भी तरह राजी नहीं

हुआ। राजाराम बाबूसे उसने कहा था, "अस्पतालके लिए आप जितना रुपया देना चाहें, सब अपनी लड़कीके नामसे दीजियेगा। मैं जब उस अस्पतालका भार सम्हालूँगा तब उसके लिए मैं कुछ भी नहीं लूँगा, अवैतनिक सेवा करूँगा। मैं डाक्टर हूँ, जीविकाके लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

नीरदकी इस अत्यधिक अनासक्तिको देखकर राजाराम बाबूकी भक्ति उसपर और-भी बढ़ गई, और ऊर्मीने भी अत्यन्त गर्व अनुभव किया। और उस गर्वका उचित कारण मौजूद रहनेके कारण ही शर्मिलाका मन नीरदके बिलकुल खिलाफ हो गया। उसने कहा, "सब देख लूँगी मैं, कब तक टिकती है अनासक्ति!" इसके बाद फिर तो ऐसा हो गया कि नीरद जब अपनी आदतके अनुसार गम्भीरताके साथ बात करने लगता, तो शर्मिला अचानक ही बीचसे उठकर गरदन टेढ़ी करके कमरेसे बाहर चली जाती। कुछ दूर तक उसके पैरोंकी आहट सुनाई पड़ती रहती। ऊर्मीके लिहाजसे वह मुँहसे कुछ कहती नहीं थी; किन्तु उसके कुछ न-कहनेकी व्यञ्जना तेजोत्तप्त होती।

शुरू-शुरूमें नीरद हर डाकमें लम्बे-लम्बे उपदेशपूर्ण पत्र छोड़ता रहा। कुछ दिन बाद अचानक एक टेलीग्राम आया, उससे लोग चौंक पड़े। मोटी रकमकी माँग है, अध्ययनके लिए रुपयोंकी सख्त जरूरत है।

नीरदकी तरफसे ऊर्मीके रुपयोंमें हाथ न लगानेकी जो प्रतिज्ञा थी, उसका गौरव ही अब तक ऊर्मीके जीवनका मूलधन बना हुआ था। आज उसपर गहरी चोट पड़ी, किन्तु साथ ही ऊर्मीको उससे जरा-कुछ सान्त्वना भी मिली। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे और नीरदकी अनुपस्थिति लम्बी होने लगी त्यों-त्यों ऊर्मीका पहलेका स्वभाव अपने कर्तव्यकी चहारदीवारीसे निकल भागनेकी राह ढूँढ़ने लगा,— कहीं जरा सँध मिल जाय तो वह निकल भागे। अपनेको वह नाना छलोंसे धोखा भी देती और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करती। इस तरहकी आत्मग्लानिके समयमें नीरदको आर्थिक सहायता भेजकर उसे कुछ सान्त्वना मिलती, और मनमें कुछ सन्तोष भी आता।

ऊर्मीने नीरदका तार मैनेजरके हाथमें देते-हुए संकोचके साथ कहा, "काका साहब, रुपये भेज दीजियेगा।"

मैनेजरने कहा, "दालमें कुछ काला मालूम होता है। अब तक तो लोग यही समझते थे कि हमारा रुपया उनके लिए अस्पृश्य-श्रेणीका है।"

मैनेजरको नीरद पसन्द नहीं था।

ऊर्मीने कहा, "लेकिन विलायतमें–" अपनी बात वह पूरी न कर सकी।

काकाने कहा, "मैं समझता हूँ। इस देशका स्वभाव विदेशकी मिट्टीमें जाकर बदल भी जाता है, लेकिन सवाल तो यह है कि हमलोग उनसे ताल मिलाकर चल भी सकेंगे!"

ऊर्मीने कहा, "रुपये नहीं पहुँचे तो परेशानीमें पड़ सकते हैं।"

"ठीक है, भेजे देता हू। तुम ज्यादा चिन्ता न करो, बेटी! लेकिन इतना मैं कहे देता हूँ, यह जो शुरू हुआ है, इसका कोई अन्त नहीं।"

'अन्त नहीं' इसका सबूत कुछ ही दिन बाद मिल गया। पहलेसे भी बड़ी रकमकी माँग आने लगी। अबकी जरूरत पड़ी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए। मैनेजरने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "शशाङ्क बाबूसे सलाह ले लेना अच्छा होगा।"

ऊर्मी घबराकर कह उठी, "आप और चाहे जो भी कीजिये, पर जीजीके कानों तक यह बात हरगिज नहीं पहुँचनी चाहिए।"

"अकेले अपने ऊपर इतना बड़ा दायित्व लेना मैं ठीक नहीं समझता।"

"आखिर एक दिन तो रुपया सब उन्हींके हाथ पड़ेगा।"

"हाथ पड़नेसे पहले यह देखना पड़ेगा कि रुपया पानीमें न जा पड़े।"

"लेकिन उनके स्वास्थ्यका भी तो खयाल रखना है।"

"अस्वास्थ्य नाना प्रकारका होता है। यह ठीक किस प्रकारका है, मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा। यहाँ चले आवें तो शायद हवाके परिवर्तनसे ही सुधार हो जाय। मेरी समझसे वापस बुलानेका इन्तजाम कर दिया जाय तो ठीक रहेगा।"

वापस बुलानेकी बात सुनते ही ऊर्मी इतनी ज्यादा विचलित हो उठी

कि सोचने लगी, शायद उसीकी वजहसे नीरदके उच्च आदर्शको बाधा पहुँच रही है।

काकाने कहा, "इस मरतबा तो रुपया भेजे देता हूँ, पर मुझे तो लगता है, इससे डाक्टर साहबका स्वास्थ्य और भी ज्यादा बिगड़ जायगा।"

राधागोविन्द एक नातेसे ऊर्मीके काका लगते हैं। काकाकी बातका इशारा उसके चुभ गया। सन्देह होने लगा मनमें। सोचने लगी, 'जीजीसे शायद कहना ही पड़ेगा।' और फिर, अपनेको भीतरसे धक्का दे-देकर पूछने लगी, 'जितना होना चाहिए उतना दुःख क्यों नहीं हो रहा मुझे!'

ठीक इसी समय शर्मिलाकी बीमारीके बारेमें सबका मन चिन्तित हो उठा। अपने भाईकी बात याद करके खुद उसे भी डर लगने लगा। तरह-तरहके डाक्टरोंको लगा दिया गया उसकी बीमारीकी छान-बीनके लिए। शर्मिलाने थकावटकी हँसी हँसकर कहा, "सी० आई० डी० ओंके हाथसे असल अपराधी तो निकल भागेगा और उसका नतीजा भुगतना पड़ेगा निरपराधको।"

शशाङ्कने चिन्तित चेहरेसे कहा, "देहकी खानातलाशी शास्त्रानुसार ही चलने दो,—नतीजा अच्छा ही निकलेगा, नतीजा भुगतनेकी ऐसी कोई खास बात नहीं।"

और मजा यह है कि ठीक इसी समय शशाङ्कके हाथमें दो बड़े-बड़े काम आ पड़े। एक था गङ्गाके किनारे जूट-मिलमें, और दूसरा टालीगंजकी तरफ मीरपुरके जमींदारोंके काफी लम्बे-चौड़े बगीचेमें आलीशान मकान बनेगा। जूट-मिलकी कुली-बस्तीका काम खतम कर देनेकी मियाद थी तीन महीनेकी। कईएक ट्यूब-वेल बिठाने थे कई जगह। शशाङ्कको जरा भी फुरसत नहीं थी। शर्मिलाकी बीमारीकी वजहसे उसे घरमें फँसा रहना पड़ता, पर उसका मन रहता कामकी चिन्तामें।

जबसे ब्याह हुआ है तबसे आज तक शर्मिलाको कभी ऐसी बीमारीने नहीं घेरा जिससे शशाङ्कको कोई खास चिन्ता करनी पड़ी हो। इसीसे अबकी जो वह बीमारी हुई उसके उद्वेगसे शशाङ्कका मन बच्चोंकी तरह छटपटाने

लगा। कामका हर्जा करके बार-बार वह घूम-फिरकर स्त्रीके बिस्तरके पास जाकर हताश-सा बैठ जाता। शर्मिलाके माथेपर हाथ फेर देता, और पूछता, "कैसी तबीयत है?" शर्मिला उसी वक्त जवाब देती, "तुम झूठमूठको क्यों फिक्र करते हो, मेरी तबीयत ठीक है।" यह विश्वास करनेकी बात नहीं, पर, विश्वास करनेकी तीव्र इच्छा होनेसे शशाङ्क उसपर चटसे विश्वास करके छुट्टी पा जाता।

शशाङ्कने कहा, "ढेनकानलके राजाका एक बड़ा-भारी काम मेरे हाथ आया है। प्लैनके बारेमें दीवानके साथ बात करने जाना है। जितनी जल्दी हो सकेगा, मैं वापस आ रहा हूँ, डाक्टर आनेके पहले ही आ जाऊँगा।"

शर्मिलाने उलाहनेके तौरपर कहा, "तुम्हें मेरे गलेकी सौगन्द है, जल्द-बाजी करके कहीं काम हाथसे न खो देना। मैं समझ रही हूं, तुम्हें ढेनकानल भी जाना पड़ेगा। जरूर जाना, न जाओगे तो मेरी उलटी तबीयत खराब करोगे तुम। मेरी देख-भालके लिए काफी आदमी हैं यहाँ।"

शशाङ्कके मनमें बड़ी-भारी दौलत इकट्ठी करनेकी हवस दिन-रात चक्कर काटा करती है। उसका खिंचाव धन-दौलतकी तरफ उतना नहीं जितना कि बड़े होनेकी तरफ है। बड़ी कोई चीज गढ़ डालनेमें ही पुरुषका पुरुषार्थ है। दौलत-जैसी चीजको नाचीज समझकर नफरतकी निगाहसे तभी देखा जा सकता है जब उससे सिर्फ किसी कदर दिन काटे जाते हैं। पर, जब उसको चोटीको पहाड़की चोटीकी तरह ऊँचा कर दिया जाता है तब आम लोग उसकी इज्जत करने लगते हैं। उससे अपना कोई उपकार या फायदा न होनेपर भी मात्र उसके बड़प्पनको देखकर लोग और भी ज्यादा खुश होते हैं, उसकी तारीफ करनेमें ही साधारण लोगोंके चित्तको स्फूर्ति मिलती है। शर्मिलाके सिरहानेके पास बैठे-हुए शशाङ्कके मनमें जब कि जोरोंका उद्वेग चलता रहता, ठीक उन्हीं क्षणोंमें वह यह सोचे बगैर नहीं रह सकता कि उसके काम-काजकी सृष्टिमें अनिष्टकी आशङ्का कहाँ पनप रही है। शर्मिला जानती है कि शशाङ्ककी यह चिन्ता कंजूसकी दुश्चिन्ता नहीं बल्कि अपनी हालतकी नीचेकी मंजिलमें जयस्तम्भकी नींव

डालकर उसे ऊपर तक चुनते चले जानेके पौरुषकी चिन्ता है। शशाङ्कके इस गौरवसे शर्मिला अपनेको गौरवान्वित समझती है। इसीसे, उसके लिए आरामदे होनेपर भी, वह यह नहीं चाहती कि बीमारीके वक्त पति उसकी तीमारदारीमें लगकर काम-काजमें ढील करें। यही वजह है कि शशाङ्कको वह बार-बार कार्यकी तरफ ध्यान देनेको कहती रहती है।

इधर शर्मिलाको अपने कर्तव्यकी इतनी चिन्ता है कि जिसकी हद नहीं। वह खुद तो पड़ी है बिस्तरपर, नौकर-चाकर क्या करते होंगे सो कौन जाने! इसमें कोई सन्देह नहीं कि रसोईमें घी बरबाद जा रहा होगा, नहान-घरमें ठीक वक्तपर गरम पानी हरगिज नहीं रखा गया होगा, बिस्तरपर धुली-हुई चादर बिछाने और तकियोंकी खोलियाँ बदलनेका किसे होश है? भंगीसे नाली साफ करानेकी किसको फिकर है? धोबीके यहाँसे जो कपड़े आये होंगे उनमें कितने रह गये, कितने बदल गये, कोई ठीक नहीं। शर्मिलासे रहा नहीं जाता, लुक-छिपकर वह उठके चल देती है घर सम्हालने। नतीजा यह होता है कि दर्द और बुखार बढ़ जाता है, और डाक्टरकी समझमें नहीं आता कि ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ!

आखिर ऊर्मिमालाकी पुकार हुई। शर्मिलाने उसे घर बुलाकर कहा, "कुछ दिनके लिए तू कालेज छोड़कर मेरे घरको बचा, बहन! नहीं तो मैं निश्चिन्त होकर मर भी नहीं सकती।"

जो पूरा इतिहास जानते हैं वे यहाँ जरूर जरा मुसकरा देंगे, और कहेंगे, 'समझ लिया।' समझनेके लिए ज्यादा दिमागकी जरूरत नहीं। जो होनहार होता है वही होता है, और वही काफी है। और फिर ऐसा समझ लेनेका भी कोई कारण नहीं कि तकदीरका खेल चलता रहेगा ताशकी पत्तियोंकी तरह छिपे-छिपे, शर्मिलाकी आँखोंमें धूल झोंककर।

ऊर्मीके उत्साहका ठिकाना न रहा जब वह यह अनुभव करने लगी कि 'जीजीकी सेवा करने जा रही हूं।' वह सोचने लगी, 'इस कर्तव्यके सामने और-सब कामको हटाकर एक तरफ कर देना चाहिए। और कोई चारा

नहीं। इसके सिवा, यह तीमारदारीका काम ठहरा, उसके भावी जीवनके चिकित्सा-कार्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध है इसका, बल्कि यों कहना चाहिए कि यह उसीका एक अङ्ग है।'

बड़े आडम्बरके साथ उसने एक चमड़ेकी जिल्दकी डाक्टरी नोटबुक ली। उसमें बीमारीका रोजाना उतार-चढ़ाव दर्ज किया करेगी। इलाज करनेवाले डाक्टर उसे अनभिज्ञ समझकर कहीं उसकी अवज्ञा न करने लगें, इस खयालसे उसने तय किया कि जीजीकी बीमारीके बारेमें जहाँ जो-कुछ साहित्य मिले उसे पढ़ लेना चाहिए। उसकी एम० एस-सी० परीक्षाका विषय है शरीरतत्त्व, लिहाजा रोगतत्त्वकी पारिभाषिक व्याख्या समझनेमें उसे परेशानी न होगी। मतलब यह कि जीजीकी तीमारदारीमें पड़कर वह अपने कर्तव्यसूत्रसे विच्छिन्न नहीं होगी, बल्कि और-भी ज्यादा एकाग्र चित्त और कठिन प्रयत्नसे उसका अनुसरण ही करेगी, यह समझकर वह अपनी पढ़नेकी किताबें और नोटबुक वगैरह बेगमें भरकर सीधी भवानीपुरके मकानमें जा दाखिल हुई।

किन्तु, जीजीकी बीमारीको लेकर रोग-तत्त्वके सम्बन्धमें मोटी-मोटी किताबें उठाने-धरनेका ऊर्मीको मौका ही नहीं मिला। कारण, विशेषज्ञ डाक्टर अभी तक रोगका नाम ही तय नहीं कर पाये हैं।

ऊर्मीने सोचा कि उसे शासनकर्ताका काम मिला है। लिहाजा उसने गम्भीर मुँह बनाकर जीजीसे कहा, "डाक्टरकी हिदायतोंका ठीक-ठीक अमल हो रहा है या नहीं, यह देखना मेरा काम है, अब तुम्हें मेरी बात सुननी होगी। पहलेसे कहे देती हूँ!"

जीजी उसकी जिम्मेदारीकी तड़क-भड़क देखकर हँस दी। बोली, "अरे, तैंने इतना गम्भीर होना किस गुरुसे सीख लिया? नई दीक्षा है न, इसीसे इतना उत्साह है। मैंने तो तुझे इसलिए बुलाया है कि तू मेरी बात सुनेगी। तेरा अस्पताल तो अभी बना नहीं, मेरी घर-गृहस्थी बनी-बनाई है। फिलहाल तू उसका चार्ज सम्हाल ले, तेरी जीजीको जरा छुट्टी मिल जाय।"

शर्मिलाने अपनी रोगशय्यासे उसे एक तरहसे जबरदस्ती ही हटा दिया।

आज जीजीके घरके राज्यमें प्रतिनिधि-पद उसीका है। वहाँ जो अराजकता छा रही है, जल्दसे जल्द उसे रोकना है। इस गृहस्थीके सर्वोच्च शिखरपर जो एकमात्र पुरुष विराज रहा है उसकी सेवामें जरा-सी भी कोई त्रुटि न होने पाये, इस महान उद्देश्यके लिए त्याग स्वीकार करना इस घरके छोटे-बड़े सभी अधिवासियोंका एकमात्र साधनाका विषय है।

शर्मिलाके मनमें ऐसा एक संस्कार-सा ही बैठ गया है कि इस घरका मालिक अत्यन्त निरुपाय है और अपनी देह-यात्राका निर्वाह करनेमें शोचनीय रूपसे अकर्मण्य है ; और वह उसके मनसे किसी कदर निकलना ही नहीं चाहता। हँसी भी आती और स्नेहसे भीगे-हुए मनको तरस भी आता जब देखती है कि चुरुटकी आगसे कुरतेकी बाँह जल रही है और हजरतको होश ही नहीं! सवेरे उठकर मुँह धोया और कमरेके कोनेमें लगा-हुआ नल खुला छोड़कर इञ्जीनियर साहब अपने कामसे चल दिये। वापस आकर देखते हैं तो घर-भरमें पानी-ही-पानी भरा है, कारपेट भीगकर मटियामेट हो गया है। शर्मिलाने इस जगह नल बिठानेकी शुरूसे ही मनाही की थी। उसे मालूम था कि इस महापुरुषके हाथसे उस कोनेमें रोज बिस्तर और कारपेटके पास जल और स्थलमें ऐसा गठबन्धन हुआ करेगा जो देखते ही बनेगा। लेकिन आप तो बड़े-भारी इञ्जीनियर ठहरे न, वैज्ञानिक सहूलियतकी दुहाई देकर जहाँ तक बस चलता है नाना असुविधाओंकी सृष्टि करनेमें पीछे कदम नहीं रखते! खामखा क्या तो धुन सवार हुई कि एक दिन आप अपने खास निजी ऑरिजिनल प्लैनसे एक 'स्टोव' बना बैठे। उसमें इधर दरवाजा तो उधर दरवाजा, इधर एक चोंगा तो दूसरी तरफ ढालू रास्तेसे राखका सम्पूर्णरूपसे अधःपतन। उसमें सेकनेकी, तलनेकी, राँधने-उबालनेकी, पानी गरम करनेकी, मतलब यह कि सब तरहकी व्यवस्था थी, और सबके लिए न्यारे-न्यारे खाने और गुफाएँ थीं। उसकी महिमाको अत्यन्त उत्साह और अच्छी भाषा-शैलीके साथ सह लेना पड़ा था, कामकी चीजके हिसाबसे नहीं किन्तु शान्ति और सद्भाव बनाये रखनेके लिए। अधेड़-उमर बच्चोंका खेल ही ऐसा होता है, क्या किया जाय! कोई रोकता है तो अनर्थकी सृष्टि होती

है, और ऐसे दो दिनमें भूल-भाल जाते हैं। हमेशाकी व्यवस्थामें वैज्ञानिक पुरुषोंका मन नहीं लगता, उद्भट कुछ-न-कुछ करनेको जी चाहता रहता है, और स्त्रियोंकी जिम्मेदारी यह है कि मुँहसे तो उनकी हाँमें हाँ मिला देना और कामके वक्त चलना अपने मतानुसार। हर तरहसे शर्मिला पति-पालनकी जिम्मेदारी अब तक बराबर बड़े आनन्दसे निभाती आई है।

इतने दिन तो बीत गये। अपनेको अलग करके शर्मिला शशाङ्कके जगतकी कल्पना ही नहीं कर सकती। आज उसे डर लग रहा है कि बीचमें जमदूत आकर कहीं जगत और जगद्धात्रीमें विच्छेद न करा दे। बल्कि उसे तो यहाँ तक आशङ्का है कि मरनेके बाद भी शशाङ्ककी दैहिक लापरवाही उसकी विदेही आत्माको अशान्त बनाये रखेगी। सौभाग्यसे ऊर्मी थी। वह उस जैसी शान्त नहीं है। फिर भी, उसकी तरफसे काम तो चलाये जा रही है। वह काम भी तो औरतोंके हाथका काम है। स्त्रियोंके स्निग्ध हाथोंका स्पर्श मौजूद न हो तो मरदोंके रोजमर्राकी जिन्दगी और उसकी जरूरतोंमें रस ही न रहे, सब-का-सब नीरस और श्रीहीन हो जाय। इसीसे, ऊर्मी जब अपने सुन्दर हाथोंसे सेबके छिलके उतारकर उन्हें ठीक ढंगसे बना-बनाकर रखती है, नारंगीकी फाँकें नुका-नुकाकर उन्हें सफेद पत्थरके थालमें सजाती है और बेदाना छीलकर उसके एक-एक दानेको जतनसे इकट्ठा करके चाँदीके कटोरेमें रखती है, तब शर्मिला अपनी बहनके अन्दर मानो अपनेको ही अनुभव करने लगती है।

बिस्तरपर पड़ी-पड़ी हर वक्त वह कामकी फरमाइश किया करती—

'उनका सिगरेट-केस तो भर दे, ऊर्मी!'

'देख तो सही, मैला रूमाल पड़ा होगा जेबमें, उन्हें कहाँ खयाल रहता है बदलनेका!'

'जरा जूतोंको तो देख! सीमेण्ट-बालू जमकर पक्की हो गई होगी। नौकरसे कहकर साफ करवा लें, इतना भी होश नहीं।'

'तकियोंकी खोली तो बदल दे, बहन!'

'फेंक उन फटे कागजोंको, टोकनीमें डाल दे।'

'एक बार आफिस-वाला कमरा तो देख आ, ऊर्मी! मैं कहती हूं न, कैशबक्सकी चाभी टेबिलपर रखी छोड़ गये होंगे।'

'फूलगोभीके पौधे लगानेका वक्त आ गया, खयाल रखना!'

'मालीसे कह देना, गुलाबके पौधोंकी डालियाँ छाँट दे।'

'जरा देखो तो सही, कोटके पीछे चूना लगा हुआ है, इतनी जल्दी किस बातकी है, जरा ठहरो! – ऊर्मी, बुरुश तो कर दे, बहन, कोटकी पीठपर।'

ऊर्मी किताब पढ़नेवाली लड़की है, काम करनेवाली नहीं, फिर भी बड़ा आनन्द आता है उसे। जिन कड़े नियमोंकी चहारदीवारीके अन्दर वह थी उसमेंसे निकलनेके बाद ये-सब काम उसे अनियम-से ही मालूम होते हैं। इस घरकी कार्यधाराके भीतर-ही-भीतर जो उद्वेग चल रहा है, साधना चल रही है, वह उसके मनमें नहीं है; उस चिन्ताका सूत्र है उसकी जीजीके मनमें। इसीलिए उसके लिए ये-सब काम खेलके सिवा और कुछ नहीं। यह एक तरहकी छुट्टी है, उद्देश्य-शून्य उद्योग। वह अब तक जहाँ थी उससे यह बिलकुल अलग दुनियाँ है। यहाँ उसके सामने कोई लक्ष्य उँगली दिखाकर 'खबरदार' नहीं कहता, और फिर मजा यह कि दिन यहाँके काम-काजसे भरे-पूरे हैं, और काममें है वैचित्र्य। गलती हो, त्रुटि हो, तो उसके लिए कड़ी जवाबदेही नहीं। जीजी थोड़ा-बहुत कुछ कहती भी हैं तो शशाङ्क उसे हँसीमें उड़ा देता है; मानो ऊर्मीकी गलतीमें कोई खास रस हो! वास्तवमें आजकल इस घर-गृहस्थीसे दायित्वका गाम्भीर्य जाता रहा है, ऐसी एक ढीली अवस्था आ गई है जो भूल-चूककी कुछ परवाह ही नहीं करती, और इसीमें शशाङ्कको आराम और आनन्द मिलता है। उसे ऐसा लगता है जैसे पिकनिक चल रही हो। और खासकर ऊर्मीको जो किसी बातकी फिकर नहीं, रंज नहीं, शर्म नहीं, सभी बातोंमें उत्साहका अन्त नहीं, उससे शशाङ्कके अपने मनसे भी काम-धन्धेका भारी बोझा-सा उतर जाता है, सारी थकावट दूर हो जाती है, और यह उसके लिए बड़ा-भारी लाभ है। काम पूरा होते ही, और कभी-कभी उसे अधूरा ही छोड़कर, शशाङ्कका मन घर आनेके लिए व्याकुल हो उठता है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ऊर्मी काम-काजमें होशियार नहीं है। फिर भी, जरा गौरसे देखा जाय तो एक बात खास तौरसे नजर आती है कि कामसे न सही, खुद अपनेको चारों तरफ घुमा-फिराकर उसने इस घरकी बहुत दिनोंकी एक जबरदस्त कमीको पूरा कर दिया है, वह कमी ठीक कौन-सी है सो निर्दिष्ट भाषामें नहीं कही जा सकती। इसीसे जब शशाङ्क घर आता है तो यहाँकी हवामें वह एक तरहकी खास छुट्टीकी हिलोरें अनुभव करने लगता है। उस छुट्टीका आराम सिर्फ घरकी सेवामें ही नहीं मिलता, सिर्फ फुरसत ही में नहीं मिलता, किन्तु उसका एक खास रसमय स्वरूप है। सचमुच ऊर्मीकी अपनी छुट्टीकी खुशीने यहाँके सारे सूनेपनको भर दिया है, दिन-रातको चञ्चल कर रखा है। हर वक्तका चाञ्चल्य काम-काजसे थके-हुए शशाङ्कके खूनमें आनन्दकी हिलोरें पैदा करता रहता है। दूसरी तरफ शशाङ्क ऊर्मीको पाकर प्रसन्न है, इसकी प्रत्यक्ष उपलब्धिसे ऊर्मीको भी आनन्द मिलता है। और अब तक यही सुख ऊर्मीको नहीं मिला। वह जो अपने अस्तित्व-मात्रसे किसीको खुश किया करती है, यह तथ्य बहुत दिनों तक उससे छिपा रहा, और इसीसे उसके यथार्थ गौरवकी मानहानि हो रही थी।

शशाङ्कका खाना-पहनना उसकी आदतके अनुकूल हो रहा है या नहीं, ठीक वक्तपर ठीक चीज उसे मिल जाया करती है या नहीं, ये सब बातें इस घरके मालिककी दृष्टिमें आज गौण हो गई हैं, वैसे ही, बिना कारण ही वह प्रसन्न है। शर्मिलासे वह कहता है, "तुम जरा-जरा-सी बातपर इतनी घबराने क्यों लगती हो? आदतमें जरा हेर-फेर हो जानेसे कोई तकलीफ थोड़े ही होती है, बल्कि अच्छा ही लगता है।"

शशाङ्कका मन इस समय ज्वार-भाटेके बीचकी नदीके समान हो रहा था। कामकी रफ्तार जरा-कुछ थम-सी गई थी। अब उसके मुँहसे पहलेकी तरह ऐसा सुननेमें नहीं आता कि 'जरा-सी देर हो जानेसे हजारोंका नुकसान हो जायगा', 'जल्दी करो, नहीं तो आज भी सब काम चौपट हो जायगा', इत्यादि। ऐसी कोई बात मुँहसे निकलते ही ऊर्मी उसके गाम्भीर्यको उसी घड़ी चूर-चूर कर देती है। वह जोरोंसे हँस उठती है। शशाङ्कके मुँहपर

गाम्भीर्यका भाव देखते ही वह कहने लगती है, "आज तुम्हारा वह हौआ आया था क्या, हरी-पगड़ीवाला दलाल? वही डर दिखा गया है मालूम होता है!"

शशाङ्क अचम्भेमें आकर कहता, "तुम उसे कैसे जान गईं?"

"मैं उसे अच्छी तरह जानती हूँ। तुम उस दिन बाहर चले गये थे, वह अकेला बैठा रहा था बरण्डेमें। मैंने ही उसे तरह-तरहकी बातोंमें फँसाकर बिठा रखा था। उसका देश शायद बीकानेर है, मशहरीमें आग लग जानेसे उसकी स्त्री जलके मर गई है,–अब दूसरी शादीकी फिराकमें है।"

"तब तो वह रोज ठीक ऐसे हिसाबसे आया करेगा जब कि मैं बाहर चला जाया करूँगा। जब तक दूसरी स्त्रीका पता नहीं लगता तब तक यहाँ उसका सपना खूब जमा करेगा!"

"तुम मुझे बता जाया करो, उससे कौन-सा काम निकालना है। उसके रंग-ढंगसे मालूम होता है कि मैं उससे काम निकाल सकूँगी।"

आजकल शशाङ्कके मुनाफेके खातेमें निन्यानवेके ऊपर जो मोटी रकमें चालू हालतमें हैं वे बीच-बीचमें अगर जरा कहीं रुक भी जाती हैं तो उससे चञ्चल हो उठनेकी कोई बात उसमें नहीं दिखाई देती। शामको रेडियोके पास बैठनेका उत्साह अब तक उसमें नहींके बराबर ही था, किन्तु, आजकल ऊर्मी जब उसे रेडियो सुननेको खींच लाती है तो उसे वह तुच्छ नहीं मालूम होता, और न उसमें वह समयकी बरबादी ही समझता है। हवाई-जहाजकी उड़ान देखनेके लिए एक दिन तड़के उठकर उसे दमदम तक दौड़ना पड़ा; और चाहे जो-भी हो, पर वैज्ञानिक कुतूहल उसका प्रधान आकर्षण हरगिज नहीं था। न्यु-मार्केटमें सौदा खरीदने जाना उसकी जिन्दगीमें शायद यह पहली ही घटना थी, लेकिन वह गया और खुशी-खुशी गया। इसके पहले कभी-कभी फल-फूल या शाक-सब्जी लानेका काम पड़ता तो शर्मिलाको खुद ही जाना पड़ता था। वह जानती है कि यह काम खास तौरसे उसीके महकमेका है। इसमें शशाङ्क उसके साथ सहयोगिता करेगा, इस बातका उसने कभी खयाल भी नहीं किया; और न उसकी ऐसी इच्छा ही थी।

किन्तु ऊर्मी असलमें चीज खरीदने नहीं जाती, चीजें उलटने-पलटने जाती है। वह चीज उठाती है और दाम पूछकर रह जाती है। शशाङ्क अगर खरीदना चाहता है तो वह उसके हाथसे रुपयोंका बैग छीनकर उसे अपने बैगमें कैद कर लेती है।

शशाङ्कके कामकी व्यथाको ऊर्मी कतई नहीं समझती। कभी-कभी बाधा देनेमें वह बहुत ज्यादती भी कर जाती है ; और तब शशाङ्कसे वह फटकार भी खा जाती है। पर उसका नतीजा ऐसा दुःखदायक होता है कि उसका दुःख दूर करनेमें शशाङ्कको दूना समय देना पड़ता है। एक तरफ ऊर्मीकी आँखोंमें एकसाथ जोरोंसे आँसू उमड़नेकी सम्भावना होती है तो दूसरी तरफ अनिवार्य कामका तकाजा, इन दोनोंके बीच पड़कर अन्तमें उसे घरके चेम्बर में ही सब कामसे फारिग होनेकी कोशिश करनी पड़ती है। किन्तु, तीसरे पहरके बाद फिर वहाँ रहना उसके लिए दुःसह हो जाता है। किसी कारणसे जिस दिन ज्यादा देर हो जाती है उस दिन ऊर्मीका रूठना दुर्भेद्य मौनकी ओटमें ऐसा सख्त हो जाता कि उसे लचाना मुश्किल हो जाता। ऊर्मीके उन रुके-हुए आँसुओंके कुहरेमें छिपा-हुआ अभिमान शशाङ्कको भीतर ही भीतर आनन्द देता है। वह भले आदमीकी तरह कहता, "ऊर्मी, तुम्हें अपने न-बोलनेके सत्याग्रहकी रक्षा करनी ही चाहिए, पर दुहाई है धर्मकी, तुमने न-खेलनेकी प्रतिज्ञा तो नहीं की थी !" इसके बाद टेनिस-बेट लेकर दोनों खेलमें जुट जाते। खेलमें शशाङ्क जीतके बिलकुल नजदीक पहुँचनेके बाद जान-बूझकर हार जाता। और मजा यह कि नष्ट-हुए समयके लिए फिर दूसरे दिन सवेरे उठकर पश्चात्ताप करता रहता।

किसी एक छुट्टीके दिन, दोपहरके बाद, शशाङ्क जब दाहने हाथमें लाल पेन्सिल लेकर बायें हाथकी उंगलियोंसे बेमतलब बालोंको छेड़ता-हुआ आफिसकी टेबिलपर बैठा दुःसाध्य कामपर झुक पड़ता तब ऊर्मी आकर कहती, "तुम्हारे उस दलालके साथ आज, मैंने तय किया है, पारसनाथका मन्दिर देखने जाऊँगी। चलो मेरे साथ। तुम मेरे जीजाजी हो न, चलो !"

शशाङ्क विनयके साथ कहता, "नहीं, ऊर्मी, आज नहीं, इस वक्त उठके जाना मेरे लिए काल है।"

जरूरीसे जरूरी कामकी महत्तासे ऊर्मी जरा भी नहीं डरती। कहती, "अबला तरुणीको अरक्षित अवस्थामें हरी-पगड़ी-धारीके हाथ सौंपनेमें तुम्हें जरा भी सङ्कोच नहीं,- यही है क्या तुम्हारी 'शिवलरी' ?"

अन्तमें ऊर्मीकी ज्यादतीसे तंग आकर शशाङ्कको जाना ही पड़ता मोटर हाँककर। और इस तरहकी ज्यादतीकी खबर लगते ही शर्मिला बहुत बिगड़ उठती। क्योंकि उसकी रायमें पुरुषोंकी साधनाकी जगह स्त्रियोंका अनधिकार प्रवेश किसी भी हालतमें क्षम्य नहीं। ऊर्मीको वह बराबर बच्ची ही समझती आई है। आज भी वही धारणा उसके मनमें ज्योंकी त्यों मौजूद है। सो हुआ करे। इसके मानी यह नहीं कि आफिस कोई खेलकी जगह हो। इसके लिए ऊर्मीको बुलाकर उसे वह काफी कड़ाईसे डाटती-फटकारती। उसके डाटने-फटकारनेका निश्चित फल भी हो सकता था ; किन्तु स्त्रीकी गुस्सेकी आवाज सुनकर शशाङ्क खुद दरवाजेके बाहर आ खड़ा होता : और उर्मीको तसल्ली देता-हुआ आँखका इशारा करता रहता। ताशका पैक दिखा-दिखाकर इशारा किया करता। इसका मतलब यह कि 'चली आओ न, आफिस-रूममें बैठकर मैं तुम्हें पोकर सिखाऊँगा।' उस वक्त खेलनेकी फुरसत कतई नहीं होती, एक-एक मिनट भारी मालूम होता, फिर भी वह उसे 'जीजी'की कड़ी डाट-फटकारसे बचानेके लिए अपना कीमती वक्त पानीकी तरह बहा देता। असलमें शर्मिलाकी फटकारसे ऊर्मीके मनको उतनी ठेस नहीं पहुँचती जितनी कि खुद शशाङ्कको पहुँचती। वह खुद खुशामद करके, यहाँ तक कि थोड़ी-बहुत डाट बताकर ऊर्मीको अपने कामकी जगहसे तो हटा देना चाहता, पर शर्मिला इस विषयको लेकर उसे डाटे-फटकारे, यह उससे नहीं सहा जाता।

शर्मिला शशाङ्कको बुलाकर कहती, "तुम उसकी हरएक जिदको इस तरह बरदाश्त करोगे तो कैसे काम चलेगा ? वक्त नहीं देखना, जरूरी कामको नहीं समझना,- इससे तुम्हारा नुकसान जो होता है !"

शशाङ्क कहता, "क्या हुआ इससे, अभी बच्ची है, यहाँ उसका कोई साथी नहीं जरा हँसेगी-खेलेगी नहीं तो जीयेगी कैसे ?"

यह तो हुआ उसका नाना प्रकारका बचपन। पर, शशाङ्क जब किसी मकानका नक्शा लेकर बैठता, तो वह कुरसी खींचकर उसके पास जा बैठती, कहती, "समझा दो मुझे।" बड़ी आसानीसे समझ जाती, गणित-सम्बन्धी नियम उसे जटिल नहीं मालूम होते। शशाङ्क बहुत खुश हो उठता और उसे 'प्रॉब्लेम' (सवाल) देता। वह उसका जवाब लिख लाती। जूट कम्पनीके स्टीम-लञ्चपर बैठकर शशाङ्क कामकी तहकीकात करने जाता तो वह भी जिद पकड़ बैठती, 'मैं भी चलूँगी।' सिर्फ जाती ही नहीं, बल्कि मापने-जोखनेके हिसाबपर बहस भी करती। शशाङ्क पुलकित हो उठता। भरपूर कवित्वसे इसमें रस कहीं ज्यादा है। इसीसे अब चेम्बरका काम अगर घर ले आता है तो उसके मनमें बाधा-विघ्नकी आशङ्का नहीं रहती। लाइन खिंचे-हुए हिसाबके खातेके काममें उसे एक साथी मिल जाता है, और साथी भी कैसा, खास साली। ऊर्मीको पास बिठाकर उसे समझाता-हुआ वह आगे बढ़ता। काम बहुत तेजीसे आगे बढ़ता हो सो बात नहीं, पर समयकी लम्बाई सार्थक मालूम होती है।

यही बात शर्मिलाको बहुत ज्यादा खटकती है, उसके मनको बड़ा धक्का पहुंचता है। ऊर्मीके बचपनको वह समझती है, उसकी गृहिणीपनेकी त्रुटियोंको भी वह स्नेहके साथ सह लेती है, परन्तु व्यवसायके क्षेत्रमें पतिके साथ स्त्री-बुद्धिके दूरत्वको जहाँ उसने स्वयं अपने लिए स्वीकार कर लिया है वहाँ ऊर्मीके बेरोकटोक जाने-आनेको वह कैसे बरदाश्त कर सकती है ? उसे यह अच्छा नहीं लगता। इसे वह महज हिमाकत ही समझती है। 'गीता'ने भी यही बताया है, अपनी-अपनी सीमाको मानते-हुए चलना ही स्वधर्म है।

मन-ही-मन अत्यन्त अधीर होकर एक दिन उसने ऊर्मीसे पूछा, "क्यों री ऊर्मी, तुझे क्या ये सब हिसाब-किताब, सवाल-जवाब, ट्रेस करना वगैरह सचमुच अच्छा लगता है ?"

"हाँ, जीजी, बड़ा अच्छा लगता है।"

शर्मिला अविश्वासके स्वरमें बोली, "हाँ, हाँ, लगता है अच्छा ! उन्हें खुश करनेके लिए दिखाया करती है अच्छा लगता है।"

खैर यही सही। खुद शर्मिला भी तो यही चाहती है कि ठीक वक्तपर खिलाना-पिलाना, कपड़ोंकी सम्हाल रखना ऊर्मीका कर्तव्य है, और इसीलिए उसने उसे यहाँ बुलाया है। फिर क्या बात है जो शशाङ्ककी इस जातकी खुशीसे उसकी अपनी जातकी खुशी मेल नहीं खाती ?

शशाङ्कको वह बार-बार पास बुलाकर कहती, "उसके साथ तुम क्यों समय नष्ट किया करते हो ? इससे तुम्हारे काममें हर्जा होता है। उसकी तो अभी खेलने-खानेकी उमर ठहरी, वह क्या समझे कि कौनसा काम कितना जरूरी है !"

शशाङ्क कहता, "मुझसे वह कम नहीं समझती।"

शशाङ्क समझता कि इस तारीफसे ऊर्मीकी जीजीको आनन्द मिलता होगा। भोला निर्बोध है बेचारा।

अपने कामके गौरवमें शशाङ्कने जब स्त्रीकी तरफसे अपने ध्यानको जरा संकुचित कर लिया था तब शर्मिलाने उसे मजबूरन मान लिया हो सो बात नहीं, उसे उसने अपने नई गर्वकी बात ही समझा था। इसीसे आजकल उसने अपने सेवापरायण हृदयके हकको बहुत-कुछ घटा लिया है। उसका कहना है कि 'पुरुष राजाकी जातके हैं, दुःसाध्य कार्य करनेके अधिकारको उन्हें हमेशा प्रशस्त करते रहना चाहिए। नहीं तो वे स्त्रियोंसे भी नीचे हो जाते हैं। क्योंकि स्त्रियाँ अपनी स्वाभाविक मिठास और प्रेमके जन्मगत ऐश्वर्यसे ही घरमें नित्यप्रति अपने आसनको बड़ी आसानीसे सार्थक किया करती हैं। लेकिन, पुरुष अपनेको सार्थक करते हैं प्रतिदिनके संघर्ष और युद्धसे। पुराने जमानेमें राजा लोग बिना प्रयोजन ही राज्य विस्तार करने निकला करते थे। उनकी उस युद्धयात्रामें राज्य पानेका लोभ नहीं होता था, उसका उद्देश्य होता था पुरुषके गौरवकी प्रतिष्ठा करना। इस गौरवमें स्त्रियोंको आड़े न आना चाहिए।' शर्मिलाने खुद कभी बाधा नहीं दी, उसने जान-बूझकर ही उद्देश्य-साधनके लिए शशाङ्कको रास्ता छोड़ दिया है।

किसी समय उसे उसने अपने सेवा-जालमें उलझा लिया था, फिर भी, बहुत जी दुख पानेपर भी, उस जालको वह समेटती ही जा रही है। अब भी वह काफी सेवा करती है, पर छिपे-छिपे चुपचाप।

हाय रे, आज उसके पतिकी यह कैसी पराजय दिन-दिन प्रकट होती जा रही है! रोगशय्यासे उसे सब दिखाई नहीं देता, पर आभास काफी मिल जाता है। शशाङ्कका चेहरा देखते ही वह समझ लेती है, आजकल ये कैसे तो हो गये हैं, हमेशा न-जाने किस धुनमें गरक रहते हैं! इत्ती-सी लड़कीने आकर, इन थोड़ेसे दिनोंमें, ऐसे कर्मठ पुरुषको इतनी बड़ी साधनाके आसनसे इस कदर विचलित कर दिया, आश्चर्य है। शर्मिलाको आज अपने रोगसे भी बढ़कर पीड़ा दे रही है पतिकी यह अश्रद्धेयता।

इसमें शक नहीं कि आजकल शशाङ्कके खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेकी व्यवस्था पहले जैसी नहीं चल रही है; जो पथ्य उसे बहुत अच्छा लगता है, खाते वक्त अचानक देखा जाता है कि वही नहीं है, और सब है। उसकी कैफियत मिल जाती है; हालाँ कि कैफियतको इस घरमें कभी कोई महत्त्व नहीं दिया गया, फिर भी सब चुप हैं, कोई कुछ नहीं कहता। इस तरहकी लापरवाहियाँ पहले बरदाश्त नहीं की जाती थीं, कड़ी सजाके काबिल समझी जाती थीं। और आज? आज उसी कायदे-कानूनसे-बँधे घरमें इतना बड़ा युगान्तर हो रहा है कि बड़ीसे बड़ी त्रुटियाँ यों ही प्रहसन बनकर रह जाती हैं। दोष किसे दिया जाय? जीजीके कहे-माफिक ऊर्मी जब कि रसोईघरमें बेंतके मोढ़ेपर बैठी पाक-प्रणालीके सञ्चालन-कार्यमें व्यस्त रहती और साथ-साथ पाचिका मिसरानीके पुनर्जीवनके इतिहासकी चर्चा भी चलती रहती, तब अचानक ही शशाङ्कका आविर्भाव होता। वह कहता, "यह सब रहने दो अभी।"

"क्यों, क्या करना है?"

"अभी मुझे छुट्टी है, चलो, 'विक्टोरिया-मेमोरियल-बिल्डिंग' देख आयें। उसका घमण्ड देखकर क्यों हँसी आती है, आज तुम्हें समझा दूँगा।"

इतने बड़े प्रलोभनके आगे कामसे जी चुरानेके लिए ऊर्मीका मन उसी

क्षण चञ्चल हो उठता। शर्मिला यह जानती है कि पाकशालासे उसकी सहोदराके गायब हो जानेसे भोज्य-वस्तुके उत्कर्ष-साधनमें कोई भी फर्क नहीं आयेगा, फिर भी, यह चाहना उसके बनी ही रहती कि उसके स्निग्ध हृदयका जतन शशाङ्कको आराम पहुँचाये। किन्तु आरामका जिक्र छेड़नेसे फायदा ही क्या, जब कि रोज ही स्पष्ट देखनेमें आता कि अब आराम हो गया है गौण, पति वैसे ही खुश हैं!

इस दिशामें शर्मिलाके मनमें अशान्ति बढ़ने लगी। रोगशय्यापर करवट बदलती-हुई वह अपनेको बार-बार यही कहती रहती, 'मरनेके पहले एक यही बात समझमें आई कि और तो सब-कुछ कर लिया, सिर्फ उन्हें खुश न कर सकी। सोचा था कि उर्मीमें अपनेको ही देख पाऊँगी, पर उसमें मैं कहाँ आई, वह तो बिलकुल ही अलग लड़की है।' खिड़कीके बाहरकी तरफ ताकती हुई सोचा करती, 'मेरी जगह उसने नहीं ली, उसकी जगह मैं नहीं ले सकती। मेरे चले जानेसे नुकसान होगा, पर उसके चले जानेसे सब सूना हो जायगा।'

सोचते-सोचते सहसा याद उठ आती, 'जाड़ेके दिन करीब हैं, गरम कपड़े धूपमें डालने चाहिए। ऊर्मी तब शशाङ्कके साथ 'पिंगपौंग' खेल रही थी, उसे बुला भेजा।

बोली, "ऊर्मी, यह ले चाभी। गरम कपड़े निकालकर छतपर डलवा दे धूपमें।"

ऊर्मीने आलमारीके तालेमें चाभी डाली ही थी कि इतनेमें शशाङ्कने आकर कहा, "यह सब पीछे होता रहेगा, अभी बहुत दिन पड़े हैं। चलो, खेल खतम कर लें।"

"पर, जीजी—"

"अच्छा, 'जीजी'से मैं छुट्टी लिये आता हूँ।"

जीजीने छुट्टी दे दी; और साथ ही एक गहरी साँस लेकर रह गई।

नौकरानीको बुलाकर उससे कहा, "जरा मेरे माथेपर ठण्डे पानीकी पट्टी तो रख दे।"

ऊर्मी यद्यपि बहुत दिनों बाद सहसा छुटकारा पाकर अपनेको भूल-सी गई थी, फिर भी अचानक किसी-किसी दिन उसे याद आ जाती अपने जीवन की कठोर जिम्मेदारी। वह तो स्वाधीन नहीं है, अपने व्रतके बन्धनमें बँधी है। और उस व्रतके साथ मिलकर जिस बन्धनने उसे एक खास व्यक्तिके साथ बाँध दिया है उसका अनुशासन है उसपर। उसके दैनिक कर्तव्यकी छोटी-छोटी त्रुटियोंको वही तो सुझाया करता था; और जाते वक्त त्रुटि-सुधारका तरीका भी बता गया है वह। इस बातको ऊर्मी किसी भी तरह अस्वीकार नहीं कर पाती कि उसके जीवनपर नीरदका अधिकार हमेशाके लिए हो गया है। नीरद जब यहाँ मौजूद था तब यह मानना आसान था, मनमें वह जोर पाती थी। अब उसकी इच्छा बिलकुल ही उलटी हो गई है, और साथ ही कर्तव्य-बुद्धि भी पीछा नहीं छोड़ती। कर्तव्य-बुद्धिके अत्याचारसे मन और-भी बिगड़ा जा रहा है। अपने कसूरको माफ करना उसके लिए कठिन हो गया है, और इसीलिए कसूर अनुशासन नहीं मानता। अपने दर्द पर अफीमका परलेप लगानेके लिए वह शशाङ्कके साथ हँसी-खेलमें अपनेको बहलाये रखनेकी कोशिश करती है। कहती है, 'जब वक्त आयेगा तब अपने आप ही सब ठीक हो जायगा, अभी जितने दिनकी छुट्टी मिली है, उन सब बातोंको रहने दिया जाय।' और फिर, वह सहसा किसी-किसी दिन मन और मस्तिष्कको झकझोरकर उठ खड़ी होती और ट्रङ्कसे किताब कापी वगैरह निकालकर पूरा ध्यान लगाकर कर्तव्य पालने बैठ जाती। तब फिर शशाङ्ककी पारी आती। किताब वगैरह छीनकर वह बक्समें बन्द कर देता और उसपर खुद जमकर बैठ जाता।

ऊर्मी कहती, "जीजाजी, यह बात ठीक नहीं है। आप बहुत ज्यादती कर रहे हैं। मेरा समय नष्ट न कीजिये।"

शशाङ्क कहता, "तुम्हारा समय नष्ट करनेमें मुझे अपना समय भी नष्ट करना पड़ता है, लिहाजा हिसाब बराबर।"

इसके बाद थोड़ी देर तक छीनाझपटीकी कोशिश करके अन्तमें ऊर्मीको हार माननी पड़ती। और वह हार उसके लिए आपत्तिजनक होती हो ऐसा

भी नहीं मालूम होता। इस तरहकी बाधाओंसे कर्तव्य-बुद्धि दो-चार दिन पीड़ा पाती रहती, उसके बाद, फिर वही रफ्तार जो पहले थी।

ऊर्मी कहती, "जीजाजी, तुम मुझे कमजोर न समझ लेना। मनके अन्दर प्रतिज्ञा मैंने काफी दृढ़ रख छोड़ी है।"

"मतलब ?"

"मतलब, यहाँसे डिग्री लेकर युरोप जाऊँगी, डाक्टरी सीखने।"

"फिर ?"

"फिर अस्पताल खोलकर उसकी पूरी जिम्मेदारी लूँगी अपने ऊपर।"

"और किसकी जिम्मेदारी लोगी ? वो जो नीरद मुखर्जी नामका एक इनसफरेब्ल—"

शशाङ्कका मुँह बन्द करके ऊर्मी कहती, "चुप रहो। ऐसी बातें करोगे तो मेरे साथ तुम्हारा हमेशाके लिए झगड़ा हो जायगा।"

ऊर्मी अपनेको अत्यन्त कठोर करके कहती, 'सच्चा बनना पड़ेगा मुझे, सच्चा बनना पड़ेगा।' उसके पिता स्वयं नीरदके साथ उसका सम्बन्ध तय कर गये हैं। वह सोचती है, उस सम्बन्धके प्रति उसका सच्चा न रहना असतीत्व है।

पर मुश्किल यह है कि दूसरे पक्षकी तरफसे कोई जवाब नहीं मिलता। ऊर्मी मानो एक ऐसा पौधा है जिसने मिट्टीको तो जकड़ रखा है किन्तु आकाशके प्रकाशसे वञ्चित है, पत्ते उसके पीले पड़ गये हैं। किसी-किसी वक्त वह असहिष्णु हो उठती, मन-ही-मन सोचती, 'यह शख्स है कैसा, एक चिट्ठी-सी चिट्ठी भी लिखते नहीं बनता इससे !'

ऊर्मी बहुत दिनों तक कॉनवेन्टमें पढ़ी है। और-कुछ हो चाहे न हो, अंगरेजीमें उसकी विद्या पक्की है। और यह बात नीरदको मालूम थी। इसीलिए नीरदने निश्चय कर रखा था कि वह अंगरेजी लिखकर ऊर्मीको मुग्ध कर देगा। बंगलामें पत्र लिखता तो आफतसे बच जाता, किन्तु अपने बारेमें बेचारा जानता ही नहीं कि वह अंगरेजी नहीं जानता। भारी-भारी शब्द जुटाकर और किताबोंके लम्बे-चौड़े वाक्य जोड़कर अपनी भाषाको वह

बोरोंसे लदी बैलगाड़ी-सी बना देता। ऊर्मीको हँसी आती, किन्तु हँसनेमें शरमाती, और अपनेको डाटकर कहती, 'देशी आदमीकी लिखी-हुई विदेशी भाषाकी त्रुटियोंको दोष समझना महज हिमाकत है, स्नॉबिश।'

देशमें रहते-हुए नीरदने जब उसके सामने क्षण-क्षणमें सदुपदेश दिये हैं तब वे उसके रंग-ढंगने गम्भीर हो उठे हैं। उसमें उसने गौरव अनुभव किया है, तब जितना वह कानसे सुनती थी उससे कहीं ज्यादा वजन अपने अन्दाजसे बढ़ा लेती थी। किन्तु लम्बे पत्रमें अन्दाजके लिए गुञ्जाइश ही नहीं रही। कमर-कसे खड़े भारी-भारी शब्द हलके हो जाते, मोटी-मोटी आवाज पकड़ी जाती कहनेके विषयके अभावके अपराधमें।

नीरदके जिस भावको ऊर्मीने पास रहते-हुए सह लिया था वही दूरसे उसे सबसे ज्यादा खटकने लगा। 'यह भला-आदमी हँसना तो बिलकुल जानता ही नहीं।' –नीरदके पत्रोंमें यह कमी सबसे ज्यादा ऊँची होकर अपनेको जताती रहती। और यही वजह है कि ऊर्मीका मन खामखा शशाङ्कके साथ नीरदकी तुलना करने बैठ जाता।

तुलनाका एक कारण उस दिन अकस्मात् ही सामने आ पड़ा। कोई कपड़ा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बक्सके नीचे ऊनका अधूरा-बुना एक जूता हाथ पड़ गया। चार साल पहलेकी बात याद आ गई। हेमन्त तब मौजूद था। सब मिलकर तब दार्जिलिंग गये-हुए थे। हँस-खुशी आमोद-प्रमोदका कोई अन्त न था। हेमन्त और शशाङ्क दोनों मिलकर हँसी-मजाकका पागल झरना-सा बहा रहे थे। ऊर्मीने अपनी एक मौसीसे ऊनका नया काम सीखा था। जन्म-दिवसमें 'भाई साहब'को देनेके लिए वह जूते बुन रही थी। उसपर शशाङ्क खूब हँसा, और बोला, "अपने भाई साहबको और चाहे जो भी दो, पर कमसे कम जूते मत देना। भगवान् मनुने कहा है कि इससे पूज्यजनोंका असम्मान होता है।"

ऊर्मीने उसी वक्त कटाक्ष करके कहा, "तो भगवान् मनुने किसे देनेको कहा है?"

शशाङ्कने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, 'असम्मानका सनातनी हकदार है

बहनोई। मेरे हककी चीज अब तक मुझे नहीं मिली, बहुत दिन हो गये। ब्याज चढ़-चढ़कर भारी हो रही है, अच्छा ही है।"

"कब किसने वादा किया था, याद तो नहीं आता!"

"याद आनेकी बात ही नहीं वह। तब तुम थीं बिलकुल नाबालिग। इसीलिए तुम्हारी जीजीके साथ शुभ-लग्नमें जिस दिन इस सौभाग्यवानका ब्याह हुआ था उस दिन सुहाग-रातकी नेत्री तुम नहीं बन सकती थीं। आज उन कोमल कर-पल्लवोंसे अ-रचित कनेठीने ही रूप ग्रहण किया है इन कर-पल्लवोंसे रचित पादुका-युगलमें। इनपर मेरा दावा रहा, पहलेसे कहे रखता हूँ मैं!'

उसका वह दावा पूरा नहीं किया गया। वे जूते यथासमय प्रणामीके रूपमें चढ़ाये गये थे भाई साहबके चरणोंमें।

इसके कुछ दिन बाद ऊर्मीको शशाङ्ककी एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी पा कर वह खूब हँसी थी। वह चिट्ठी अब भी उसके बकसमें रखी है। आज वह फिर उसे खोलकर पढ़ने लगी, उसमें लिखा था :—

"कल तुम तो चली गईं। तुम्हारी स्मृति अभी पुरानी भी न हो पाई थी कि तुम्हारे नाम एक कलंक फैलाया जाने लगा; उसे अगर तुमसे छिपाया जाय तो मैं अकर्तव्यका भागी बनूंगा।

"मेरे पैरोंमें तालतल्लाकी चट्टी बहुतोंने देखी हैं। पर, उससे भी ज्यादा गौरसे देखा है उनके छिद्रोंको भेदकर मेरे चरण-नखर-पंक्तिको मेघमुक्त चन्द्र-मालाके समान। (देखो भारतचन्द्रका 'अन्नदामङ्गल', और उपमाकी सचाईके सम्बन्धमें सन्देह हो तो अपनी जीजीसे भी इसकी मीमांसा करा सकती हो) आज सवेरे हमारे दफ्तरके वृन्दावन नन्दीने आकर जब मेरे स-पादुक चरण छूकर प्रणाम किया, तब, मेरी पद-मर्यादामें जो विदीर्णता प्रकट हुई थी, उसका अगौरव मेरे मनमें आन्दोलित होने लगा। अपने सेवकसे मैंने पूछा, 'महेश, मेरी दूसरी चट्टीकी जोड़ी किस अनिधिकारी चरणोंकी शोभा बढ़ा रही है?' उसने सिर खुजलाते हुए जवाब दिया, 'उस-घरकी उर्मी-मौसी वगैरहके साथ जब आप दार्जिलिंग गये थे तब चट्टियाँ आपके साथ गई थीं।

आप आये तब साथमें एक चट्टी थी, दूसरी नहीं–' उसका चेहरा सुर्ख हो उठा। मैंने डाटकर कहा, 'बस, चुप रहो।' वहाँ बहुतसे लोग थे। चट्टी चुराना हीन कार्य है। किन्तु, आदमीमें कमजोरियाँ होती हैं, लोभ प्रबल होता है, इसलिए वह ऐसे काम कर बैठता है। ईश्वर शायद उसे क्षमा करेंगे। फिर भी, चोरीके काममें बुद्धिका परिचय हो तो दुष्कार्यकी ग्लानि बहुत-कुछ दूर हो जाती है। किन्तु, एक चट्टी! धिक्!"

चिट्ठी पाकर ऊर्मी मुसकराती-हुई ऊनके जूते बुनने बैठी थी, किन्तु काम पूरा न कर सकी। ऊनके काममें फिर उसका उत्साह ही न रहा। आज एक जूता पाकर उसने तय किया कि यह अधूरा जूता ही वह शशाङ्कको भेंट करेगी, उस दार्जिलिंग-यात्राकी साल-गिरहके दिन जो कुछ सप्ताह बाद ही आनेवाला है। उसने एक गहरी साँस ली, 'हाय रे, कहाँ गये वे हास्योज्ज्वल आकाशमें हलके डैनोंसे उड़ते-हुए दिन!' आज तो उसके सामने केवल कर्तव्यके बोझसे परेशान बिना-छुट्टी और बिना-फुरसतकी खुश्क जिन्दगीका रेगिस्तान ही रेगिस्तान दिखाई दे रहा है।

आज फागुनकी पूनो है। होली खेलनेका दिन। किसी जरूरी कामसे शशाङ्क बाहर गया-हुआ था। इस खेलके लिए उसे फुरसत नहीं। 'इस दिनको वे भूल गये!' ऊर्मीने आज रोगशय्यापर पड़ी-हुई अपनी बहनके पाँवोंसे अबीर लगाया और प्रणाम किया। उसके बाद किसीकी तलाशमें वह घूमती-फिरती बाहरवाले कमरेमें पहुंची। देखा कि शशाङ्क टेबिलपर झुका एकाग्र चित्तसे काम कर रहा है। 'तो, आ गये बाहरसे!' दबे-पाँव वह चुपकेसे शशाङ्कके पीछे जा खड़ी हुई, और अबीरकी मुट्ठी भरकर उसके मुँह और माथेको खूब कसके रगड़ दिया। कागजात सब रंगीन हो गये। खब छीनाझपटी हुई। कोई भी किसीसे हारना नहीं चाहता। टेबिलपर लाल स्याहीकी दाबात भरी रखी थी, – शशाङ्कने उठाकर ऊर्मीकी साड़ीपर उँड़ेल दी, और आँचलमेंसे जबदस्ती गुलाल छीनकर मुँहपर रगड़ दिया। फिर शुरू हुआ भागना-दौड़ना, धमाचौकड़ी, शोरगुल। काफी अबेर हो गई, किसीको

नहाने-खाने तकका होश नहीं। ऊर्मीके कलहास्य और स्वरोच्छ्वाससे मकान गूँज उठा। अन्तमें, शशाङ्ककी तबीयत खराब होनेकी आशङ्कासे दूतपर दूत भेजकर शर्मिलाने इन्हें किसी तरह निवृत्त किया।

दिन कभीका ढल चुका है। रात भी हो चुकी है। फूलोंसे लदे कदमके पेड़के ऊपर पूर्णिमाका चाँद दिखाई दिया, उसकी चाँदनीसे सारा खुला-हुआ आकाश चाँदी-सा चमक उठा। सहसा फागुनकी हवाका एक झोंका आया और बगीचेके पेड़ झरझराकर गान गाते-हुए झूमने लगे; जमीनपर पड़ी छाया भी उसमें शरीक हो गई।

खिड़कीके पास ऊर्मी चुपचाप बैठी तमाशा देख रही थी। उसे नींद नहीं आ रही। उसकी छातीके भीतरका खून अब भी कल्पनाके झूलेमें झूल रहा है, शान्त नहीं होना चाहता। आमके बौरोंकी सुगन्धसे मन भर उठा है। आज, वसन्तमें माधवी-लताकी नस-नसमें जो फूल खिलानेकी वेदना होती है ठीक वैसी ही वेदना उसे विह्वल किये डाल रही है। बगलवाले नहानघरमें जाकर उसने माथा धो लिया, भींगी तौलियासे देह अंगौछ डाली। बिस्तरपर पड़ी-पड़ी बहुत देर तक करवट बदलती रही; और फिर थककर सपना देखती-सी कब सो गई, उसे पता नहीं।

रातके तीन बजे सहसा उसकी नींद उचट गई। चाँद तब खिड़कीके सामने नहीं था। कमरेके अन्दर अँधेरा है और बाहर बगीचेमें चाँदनी और छायाकी आँखमिचौली चल रही है। ऊर्मीकी छाती फटने लगी, उसे जोरकी रुलाई आई, उसे वह रोके न रुकी। औंधी पड़कर तकियेमें मुँह छिपाकर वह रोने लगी। उसकी यह रुलाई व्यथित हृदयका रोना है, भाषामें इसके लिए कोई शब्द नहीं, कोई अर्थ नहीं। पूछनेसे क्या वह बता सकती है कि कहाँसे इस वेदनाकी ज्वार उद्वेलित हो उठी है उसके तन-मनमें, जो बहाये लिये जा रही है उसके दिनकी कार्यसूचीको, उसकी रातकी सुख-निद्राको?

सवेरे ऊर्मीकी जब आँख खुली तब कमरेमें धूप आ चुकी थी। सुबहके काम-काजमें वह गैरहाजिर रही, थकावटका खयाल करके शर्मिलाने उसे क्षमा कर दिया।

ऊर्मी आज किस बातके पश्चात्तापसे अवसन्न हो पड़ी है, क्यों ऐसी मुरझा-सी गई है, क्यों वह महसूस कर रही है कि उसकी हार हो चली ?

अपनी जीजीसे जाकर बोली, "जीजी, मैं तो तुम्हारे यहाँ कुछ काम ही नहीं कर पाती,– कहो तो चली जाऊँ घर ?"

आज तो शर्मिलासे कहा नहीं गया कि 'नहीं, मत जा।' उसने कहा, "अच्छा, जा तू। तेरी पढ़ाईका हर्ज हो रहा है। बीच-बीचमें जब वक्त मिले तो लेख-भाल जाया कर।"

शशाङ्क तब कामसे बाहर चला गया था। उस मौकेसे उसी दिन ऊर्मी अपने घर चली गई।

शशाङ्क उस दिन यान्त्रिक तसवीर बनानेका एक-सेट सामान लेकर घर लौटा। ऊर्मीको देना चाहता था। तय हुआ था कि वह उसे यह विद्या सिखायेगा। घर आकर जब उसने उसे यथास्थान न देखा, तो वह शर्मिला के पास पहुँचा, बोला, "ऊर्मी गई कहाँ ?"

शर्मिलाने कहा, "यहाँ उसकी पढ़ाईमें हर्ज हो रहा था, सो अपने घर चली गई है।"

"कुछ दिन उस हर्जके लिए तैयार होकर ही तो आई थी वह। हर्जकी बात आज ही अचानक कैसे उठी ?"

बातके सुरसे शर्मिला ताड़ गई कि शशाङ्क उसीपर शक कर रहा है। उस विषयमें व्यर्थ बहस न करके उसने कहा, "मेरा नाम लेकर तुम उसे बुला लाओ,– वो 'ना' नहीं करेगी।"

ऊर्मीने घर आकर देखा कि बहुत दिन बाद विलायतसे उसके नाम नीरदकी चिट्ठी आई है, और टेबिलपर पड़ी-पड़ी वह उसका इन्तजार कर रही है। उसे खोलनेमें उसे डर लगने लगा। मनमें समझ रही थी कि उसकी तरफ अपराधोंका ढेर जमा हो गया है। इसके पहले, वह, नियम-भङ्गकी कैफियतमें जीजीकी बीमारीका उल्लेख कर चुकी है। कुछ दिनोंसे वह कैफियत भी झूठी होती जा रही है। शशाङ्कने बहुत ज्यादा जिद करके शर्मिलाके लिए एक दिनकी और एक रातकी नर्स रख दी है। डाक्टरके

विधानानुसार रोगीके कमरेमें हरवक्त आत्मीयजनोंका जाना-आना वे रोक देती हैं। ऊर्मी मनमें समझती है कि नीरद जीजीकी बीमारीकी कैफियतको भी बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देगा। कहेगा, 'फालतू बात है।' वास्तवमें है भी फालतू बात। उसकी तो वहाँ जरूरत नहीं। उसने अनुतप्त चित्तसे तय किया कि अबकी बार वह दोष मंजूर करके क्षमा माँगेगी। कहेगी, 'अब कभी भी गलती न होगी, हरगिज नियम भंग न करूँगी।'

चिट्ठी लिखनेके पहले, बहुत दिन बाद, आज फिर निकाल लिया उसने नीरदका फोटोग्राफ, सामने टेबिलपर रख दिया। जानती है वह, कि, इस तसवीरको देखकर शशाङ्क बहुत मजाक उड़ायेगा, फिर भी, उसने निश्चय किया कि उससे वह हरगिज न शरमायेगी। यही होगा उसका प्रायश्चित्त। नीरदके साथ उसका ब्याह होगा, इस प्रसङ्गको जीजीके घर वह दबा दिया करती थी। दूसरे लोग भी न छेड़ते थे, क्योंकि वे जानते हैं कि यह प्रसङ्ग वहाँ सबके लिए अप्रिय है। आज हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर ऊर्मीने निश्चय कर लिया कि वह अपने प्रत्येक व्यवहारमें इस बातको जोरसे घोषित करती रहेगी। कुछ दिनोंसे उसने अपने 'एनगेजमेण्ट'की अँगूठी छिपा रखी थी। आज वह भी निकालकर पहन ली। अँगूठी बहुत ही कम कीमतकी थी। नीरदने अपनी ईमानदार-गरीबीके गर्वसे ही दी थी उसे इतनी सस्ती अँगूठी, और उसकी कीमत हीरेसे भी बढ़ा दी थी। उसके मनका भाव था, 'अँगूठी की कीमतसे मेरी कीमत नहीं बल्कि मेरी कीमतसे अँगूठीकी कीमत है!'

ऊर्मीने अपनेको यथासाध्य संशोधन करके धीरे-धीरे लिफाफा खोला।

चिट्ठी पढ़कर वह सहसा उछल पड़ी। उसकी तबीयत हुई कि वह नाचे। पर, नाचनेकी आदत नहीं, लाचारी थी। सितार पड़ा हुआ था बिस्तरपर, उसे उठाकर बगैर सुर बाँधे ही उसने झनझन झनकार शुरू कर दी, और बगैर ताल-सुरके मनमाना बजाने लगी।

ठीक इसी समय वहाँ शशाङ्क आ पहुँचा। कमरेमें घुसते ही उसने पूछा, "बात क्या है, ऊर्मी? ब्याहका दिन तय हो गया क्या?"

"हाँ जी, जीजाजी! तय क्या,—हो ही गया समझो!"

"हरगिज उसमें कोई फर्क नहीं पड़नेका ?"

"हरगिज नहीं।"

"तो अभीसे नौबतवालोंको बयाना दे दिया जाय! और बागबाजारके रसगुल्ले और बहूबाजारके सन्देश—"

"तुम्हें किसी तरहकी कोशिश नहीं करनी पड़ेगी—"

"खुद ही सब कर-करा लोगी ? धन्य हो वीराङ्गना, धन्य हो! और ब्याहली-बहूको आशीर्वाद कौन देगा ?"

"उस आशीर्वादके रुपये मेरी अपनी ही जेबसे निकलेंगे।"

"यानी मछलीके तेलसे मछली तलना ? ठीकसे समझ नहीं सका ?"

"यह लो, समझ देखो।"—कहकर ऊर्मीने चिट्ठी उसके हाथमें दे दी।

पढ़कर शशाङ्क खूब जोरसे हँस पड़ा।

नीरद लिख रहा है : रिसर्चके जिस दुरूह कार्यमें वह अपनेको समर्पण करना चाहता है, भारतमें उसकी सफलता सम्भव नहीं है। इसीलिए उसे अपने जीवनका एक-और त्याग मान लेना पड़ा है। ऊर्मीके साथ विवाहका सम्बन्ध तोड़े बगैर और कोई चारा नहीं। एक युरोपीय महिला उसके साथ ब्याह करके उसके काममें आत्म-दान करना चाहती है। पर, काम वही है जो राजाराम बाबू करना चाहते थे। चाहे वह भारतमें हो या युरोपमें। राजाराम बाबूने जिस कामके लिए रुपये देने चाहे थे उसका कुछ हिस्सा विलायतमें खर्च किया जाय तो कोई अन्याय न होगा। उससे मृत व्यक्तिके प्रति सम्मान ही बढ़ेगा।

शशाङ्कने कहा, "इस जीवित व्यक्तिको कुछ-कुछ रुपये देकर अगर वहीं दूर-देशमें ही कहीं दीर्घकाल तक जिलाये रख सको, तो कोई बुराई नहीं। रुपये बन्द करनेसे डर है कि भूखके मारे कहीं यहाँ तक धावा न कर दे।"

ऊर्मी हँसती-हुई बोली, "तुम्हें अगर ऐसा डर हो तो तुम्हीं दे देना रुपया। मैं एक पैसा भी न दूंगी।"

"बादमें मन बदल तो नहीं जायगा,—मानिनीका अभिमान रहेगा तो अटल ही ?"

"बदल भी जाय तो तुम्हारा उसमें क्या साझा ?"

"सवालका सच्चा जवाब देनेसे घमण्ड तुम्हारा और भी बढ़ जायगा। लिहाजा तुम्हारी भलाईके लिए ही चुप रहता हूँ। किन्तु, मैं सोच रहा हूँ, इस शख्सके जबड़े तो मामूली नहीं मालूम होते !"

ऊर्मीके मनसे एक बड़ा-भारी बोझ-सा उतर गया, बहुत दिनोंका लदा-हुआ बोझ। मुक्तिके आनन्दमें वह क्या करे, कुछ समझमें नहीं आ रहा। उसने अपने कामकी सूची निकाली और फाड़के फेंक दी। गलीमें भिखारी खड़ा भीख माँग रहा था, –उसने अपनी अँगूठी उतारकर खिड़कीमेंसे उसकी तरफ फेंक दी।

पूछने लगी, "इन लाल-पेन्सिलके दागवाली मोटी-मोटी किताबोंको कोई हॉकर खरीद सकता है ?"

"अगर न खरीदे तो उसका नतीजा क्या होगा, जरा सुना तो दो ?"

"मुझे डर है, कहीं इनमें पुराने समयका भूत अपना अड्डा न कायम कर ले। आधी रातको कहीं वह तर्जनी उठाकर मेरे बिस्तरके पास आकर न खड़ा हो जाया करे ?"

"अगर ऐसी ही आशङ्का हो, तो हॉकरकी बाट न देखूँगा,– मैं खुद ही खरीद लूँगा।"

"क्या करोगे खरीदकर ?"

"हिन्दू-शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टिक्रिया ! गया तक जानेको तैयार हूँ मैं, उससे अगर तुम्हारे मनको तसल्ली मिले।"

"नहीं, इतनी ज्यादती छाजेगी नहीं।"

"अच्छा तो अपनी लाइब्रेरीके एक कोनेमें 'पिरामिड' बनाकर उन्हें 'ममी' करके रख दूँगा।"

"आज लेकिन तुम कामपर नहीं जा सकोगे !"

"दिन-भर ?"

'हाँ, दिन-भर।"

"क्या करना होगा ?"

"मोटरमें बैठकर गायब होना होगा !"

"अपनी जीजीसे छुट्टी तो ले आओ।"

"नहीं, वापस आकर जीजीसे कहूँगी ; और तब उनसे खूब फटकार सुनूँगी। वह फटकार मुझे अच्छी लगेगी।"

"अच्छी बात है, मैं भी तुम्हारी जीजीकी फटकार हजम करनेको तैयार हूँ। टायर फट जाय तो मनमें मलाल न लाऊँगा, घण्टेमें पैंतालीस माइलकी रफ्तारसे दो-चार राहगीरोंको पहियेके नीचे दबाकर एकदम जेलखाने तक पहुँचनेमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं। पर, तुम तीन बार वचन दो कि मोटर-यात्रा खतम होनेपर तुम हमारे ही घर वापस चली चलोगी।"

"चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी।"

मोटर-यात्राके अन्तमें दोनों भवानीपुरके मकानमें पहुँचे। पर, घण्टेमें पैंतालीस माइलकी रफ्तार अभी तक खूनसे निकल नहीं रही है। संसारकी, समाजकी, घर-गृहस्थीकी, सबकी माँग, सबका दावा, सारा भय, सारी लज्जा इस रफ्तारके नीचे पड़कर विलुप्त हो गई।

कई दिनों तक शशाङ्कके सारेके सारे काम ज्योंके त्यों पड़े रहे। कामका सारा सिलसिला ही बिगड़ गया, और कई काम चौपट भी हो गये। भीतरसे उसका मन कहने लगा, 'यह अच्छा नहीं हो रहा है। इससे कामका बहुत जबरदस्त नुकसान हो सकता है।' रातको बिस्तरपर पड़ा-पड़ा दुश्चिन्ताकी दुःसम्भावनाको वह बढ़ा-चढ़ाकर देखा करता। किन्तु दूसरे दिन फिर वह स्वाधिकार-प्रमत्त 'मेघदूत'के यक्षकी तरह हो जाता। कोई एक बार शराब पी ले तो उसके पश्चात्तापको ढकनेके लिए उसे फिर शराब पीनी पड़ती है।

शशाङ्क

कुछ दिन इसी तरह बीत गये। शशाङ्ककी आँखोंमें नशा छा गया, मन हो उठा गँदला।

अपनेको साफ-साफ समझनेमें ऊर्मीको समय लगा। किन्तु समझा एक दिन अचानक चौंककर।

मथुरा-दादासे ऊर्मी न-जाने क्यों डरती है, और जहाँ तक बनता उनसे दूर-दूर रहती है।

उस दिन मथुरा बाबू सवेरे आये, और दोपहर तक रहे थे।

उसके बाद जीजीने ऊर्मीको बुलाया। चेहरा उसका कठोर किन्तु शान्त था।

वह बोली, "रोज-रोज उनके काममें विघन डालकर तैंने किया क्या है मालूम है?"

ऊर्मी डर गई। बोली, "क्या हुआ, जीजी?"

"मथुरा-दादा कह गये हैं,– इधर कुछ दिनोंसे तेरे जीजाजीने बिलकुल ही काम नहीं देखा। जवाहरपर भार दे रखा है। वह हर चीजमें दोनों हाथोंसे चोरी कर रहा है। बड़े-बड़े गोदामोंकी छत चलनी हो गई हैं। उस दिन जोरका पानी गिरा तब पोल खुली। माल सब बरबाद जा रहा है। अपनी कम्पनीका कितना भारी नाम है, इसीसे बगैर जाँच किये बिल चुक आये हैं। अब बदनामी और नुकसानका पहाड़ टूट पड़ा है सरपर। मथुरा-दादा अलग हो जाना चाहते हैं।"

ऊर्मीकी छाती धक हो उठी, चेहरा पड़ गया राख-सा सफेद-फक। एक क्षणमें बिजलीकी तरह उसके मनका गुप्त रहस्य प्रकट हो गया। वह साफ समझ गई कि न-जाने कब, अज्ञातमें, उसका मन हो उठा था उन्मत्त पागल, उसे होश नहीं, अच्छे-बुरेका वह कुछ भी विचार नहीं कर सकी। शशाङ्कका व्यवसाय ही तब था उसका प्रतिद्वन्द्वी, उसीसे उसने लड़ाई ठानी थी। उसे कामसे छुड़ाकर हरवक्त अपने पास पानेके लिए वह हमेशा भीतर-ही-भीतर

तड़पती रहती थी। कितने ही दिन ऐसा हुआ है कि जब शशाङ्क नहान-घरमें नहा रहा है तब ऑफिससे कामकी बात लेकर कोई आया है और ऊर्मीने बगैर कुछ सोचे-समझे ही कहला दिया है, "कह दो, अभी मुलाकात नहीं होगी।"

उसे डर रहता कि शशाङ्क कहीं नहाकर तुरत ही दफ्तर न चला जाय, और वहाँ जाकर काममें फँस गया तो आजका सारा दिन ही मिट्टी हो जायगा। अपने उपद्रवी नशेका घातक चित्र उसकी आँखोंके सामने एकाएक नाच उठा। और उसी वक्त वह अपनी जीजीके पैरोंपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बार-बार रुँधे-हुए कण्ठसे कहने लगी, "मुझे निकाल दो, जीजी, अपने घरसे निकाल दो मुझे, इसी वक्त निकाल बाहर करो।"

आज शर्मिलाने निश्चित-रूपसे तय कर लिया था कि वह ऊर्मीको हरगिज क्षमा नहीं करेगी। पर, अब उसका मन पिघलकर पानी-पानी हो गया। धीरे-धीरे ऊर्मीके माथेपर हाथ फेरते-हुए उसने कहा, "तू कोई फिकर मत कर,– जैसा होगा उपाय किया जायगा।"

ऊर्मी उठके बैठ गई, बोली, "तुम्हारा अकेलेका ही नुकसान क्यों होगा, जीजी, मेरे पास भी तो रुपया है।"

शर्मिलाने कहा, "पगली कहींकी! मेरे पास कुछ भी नहीं है क्या? मथुरा-दादासे मैंने कह दिया है, इस विषयको लेकर वे कुछ गड़बड़ न करें। नुकसान मैं भर दूँगी। और, तुझसे भी कहती हूँ, ऊर्मी, उन्हें यह बात नहीं मालूम होनी चाहिए कि मुझे सब मालूम पड़ गया है।"

"मुझे माफ करो, जीजी, मुझे माफ करो।" – कहती-हुई ऊर्मी फिर जीजीके पाँवोंपर अपना सिर धुनने लगी।

शर्मिलाने अपने आँसू पोंछते-हुए थके-हुए कण्ठसे कहा, "कौन किसे माफ करेगा, बहन! संसार बड़ा ही जटिल है। जो सोचती हूं सो होता नहीं। जिसके लिए अपने जीवन तककी बाजी लगा देती हूँ वह काम भी पार नहीं पड़ता।"

अब तो ऊर्मीका यह हाल हो गया कि जीजीको छोड़कर वह एक क्षण

भी इधर-उधर नहीं होती। दवा देना, नहलाना, खिलाना, सुलाना वगैरह सब काम अपने हाथसे करती। फिरसे किताबें पढ़ना शुरू कर दिया उसने, और वह भी जीजीके पलंगके पास बैठकर। अपनेपर अब उसे विश्वास नहीं रहा,– शशाङ्कपर भी नहीं।

परिणाम यह हुआ कि शशाङ्क बार-बार रोगीके कमरेमें आने लगा। पुरुष अपनी अन्धताके कारण ही समझ नहीं पाता कि उसकी तड़पन स्त्री ताड़ रही है, या ऊर्मी मारे शरमके गड़-गड़ जाती है। शशाङ्क आता है मोहनबगानके फुटबॉल-खेलका प्रलोभन लेकर। किन्तु वह व्यर्थ हो जाता। अखबारमें छपे चार्ली चैपलिनके सिनेमाके विज्ञापनपर लाल पेन्सिलका निशान लगाकर ऊर्मीके सामने रखता, पर उससे भी सफलता नहीं मिलती। ऊर्मी जब दुर्लभ नहीं थी तब तमाम बाधा-विघ्नोंके बावजूद शशाङ्क थोड़ा-बहुत अपना काम-काज चलानेकी कोशिश करता था। किन्तु अब? अब वह भी बिलकुल असम्भव हो गया।

अभागेके इस निरर्थक निपीड़नसे शुरू-शुरूमें शर्मिला अत्यन्त दुःखमें भी सुख पाती थी। किन्तु अब क्रमशः जब देखा कि उसकी वेदना प्रबल हो उठी है, चेहरा गया है सूख और आँखोंके नीचे काला दाग पड़ गया है, तब भीतरसे उसका जी बहुत दुःख पाने लगा। खाते समय ऊर्मी अब शशाङ्कके पास नहीं बैठती, इसलिए शशाङ्कका खाने-पीनेका उत्साह और परिणाम दोनों ही घटता चला जा रहा है, यह उसका चेहरा देखते ही मालूम हो जाता है। फिलहाल, इस घरमें अचानक जो आनन्दकी बाढ़-सी आई थी वह खतम हो गई, पानी सूख चला; और ऊपरसे एक दुःख यह और बढ़ गया कि पहले जो बात थी वह भी अब नहीं रही।

किसी दिन शशाङ्क अपने चेहरेके संस्कार-कार्यमें बिलकुल उदासीन था। नाईसे वह ऐसे बाल बनवाता कि जिसे सिर मुड़ाना भी कहा जा सकता है। बाल काढ़नेकी बला ही न थी तब। शर्मिला बहुत-कुछ मगजपच्ची करती, पर, आखिर झख मारकर रह जाती। मगर इधर देखा गया कि ऊर्मीकी जोरकी हँसीके साथ की-गई संक्षिप्त आपत्ति व्यर्थ नहीं गई। नये संस्करणके

केशोद्गमके साथ-साथ सुगन्धित तेल भी माथेमें पड़ने लगा, जो कि अपने होशमें शायद उसका पहला काम था। किन्तु उसके बाद, आजकल उसकी तरफसे केशोन्नतिके विषयमें जो अनादर हो रहा है वही उसकी आन्तर्वेदनाको प्रकट किये दे रहा है, इतना ज्यादा कि उसपर प्रकट या अप्रकट किसी भी रूपमें तीव्र हँसी नहीं चल सकती। शर्मिलाकी उत्कण्ठा उसके क्षोभसे भी आगे बढ़ गई। पतिके प्रति करुणा और अपने प्रति धिक्कारका भाव ऐसा भर गया कि भीतरसे टीस मारने लगा, और साथ-साथ बीमारीकी बिथा भी बढ़ने लगी।

किलेके मैदानमें पलटनकी लड़ाईका खेल होगा। शशाङ्क डरते-डरते पूछने आया, "चलोगी, ऊर्मी, देखने? अच्छी जगहका इन्तजाम कर रखा है।"

ऊर्मीके जवाब देनेके पहले ही शर्मिला बोल उठी, "जायगी क्यों नहीं, जरूर जायगी। घरमें बैठे-बैठे बेचारीका जी घुटने लगा है, बाहर घूम आये तो अच्छा ही है।"

प्रश्रय मिलते ही दो-तीन दिन बाद फिर वह पूछने आया, "सर्कस देखने चलोगी, ऊर्मी?"

इस प्रस्तावसे ऊर्मीमें उत्साहका सञ्चार होते देखा गया।

उसके बाद, एक दिन—

"बोटानिकल गार्डन?"

इसमें हो गई गड़बड़। जीजीको अकेली छोड़कर ज्यादा देर तक दूर रहनेमें ऊर्मीका मन राजी नहीं हुआ।

उसकी जीजीने खुद शशाङ्कका पक्ष लिया, "दुनिया-भरके राज-मजूरोंके साथ भरी-दोपहरीमें खड़े-खड़े काम करना कोई आसान काम है! जरा हवा बगैर खाये, बिना घूमे-फिरे, शरीर मिट्टी नहीं हो जायगा!"

बस, एक ही दलीलके जोरसे स्टीमरपर सवार होकर राजगंज तक घूम आना असंगत नहीं मालूम हुआ।

शर्मिला मन-ही-मन कहती, 'जिसके लिए व्यापार खोने तककी इन्हें कोई चिन्ता नहीं उसका खो जाना इनसे सहा कैसे जायगा?'

शशाङ्कसे साफ-साफ किसीने कुछ नहीं कहा, किन्तु, चारों तरफसे एक तरहका अव्यक्त समर्थन उसे मिल रहा है। इससे, उसने एक तरहसे तय कर लिया है कि शर्मिलाके मनमें ऐसी कोई खास व्यथा-वेदना नहीं है। उन दोनोंको एकसाथ मिलकर खुश देखकर ही वह खुश है। साधारण स्त्रीके लिए ऐसा सम्भव नहीं हो सकता था, किन्तु शर्मिला जो असाधारण है। शशाङ्कने नौकरीके जमानेमें एक आर्टिस्टसे रंगीन पेन्सिलसे शर्मिलाकी एक तसवीर बनवाई थी। इतने दिनोंसे वह पोर्टफोलियोंमें ही पड़ी थी। उसे निकालकर वह किसी विलायती दूकानपर ले गया, बढ़ियासे बढ़िया फ्रेममें मढ़वानेके लिए। तसवीर मढ़ आई तो उसे उसने आफिस-वाले कमरेमें ठीक अपनी टेबिलके सामने दीवारपर लगवा दिया। उसके नीचे तिपाईपर रखी-हुई फूलदानीमें माली रोज फूल रख जाता।

अन्तमें एक दिन शशाङ्क अपने बगीचेमें गया सूरजमुखी-फूल कैसे खिले हैं देखनेके लिए। देखते-देखते अकस्मात् ऊर्मीका हाथ मसककर उसने कहा, "तुम जरूर जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं। और, तुम्हारी जीजी, वे तो देवी हैं। उनपर मेरी जितनी श्रद्धा है उतनी और-किसीपर नहीं। वे संसारकी मानसी नहीं, हमलोगोंसे वे बहुत ऊपर हैं।"

शर्मिलाने ऊर्मीको यह बात बार-बार साफ तौरसे समझा दी है कि उसकी अपनी अनुपस्थितिमें उसके लिए सबसे बड़ी सान्त्वनाकी बात यह होगी कि उर्मीको वह छोड़ चली है। इस घरमें और-कोई लड़की आकर कर्तृत्व करेगी, ऐसा सोचना भी उसके लिए अत्यन्त पीड़ादायक है; और साथ ही शशाङ्कका जतन करनेवाली कोई स्त्री घरमें न रहेगी ऐसी बुरी अवस्थाको भी वह मन-ही-मन नहीं सह सकती। रोजगार-धन्धेकी बात भी जीजीने उसे समझाई है। कहा है, 'अगर उनके प्रेममें किसी तरहकी बाधा आई, तो काम-धन्धा सब चौपट हो जायगा। हाँ, उनका मन सन्तुष्ट रहा तो फिर वे अपने सारे काम-धन्धेको ठीक कर लेंगे।'

शशाङ्कका मन उन्मत्त हो उठा है। वह ऐसे एक चन्द्रलोकमें है जहाँ दुनियादारीकी सबकी सब जिम्मेदारियाँ सुखकी नींद सो रही हैं। आजकल

रविवार-पालनमें विशुद्ध इसाइयों-जैसी उसकी निष्ठा हो गई है। एक दिन वह शर्मिलासे जाकर बोला, "देखो, जूट-मिलके साहबोंसे स्टीम-लञ्च मिल गया है। आज रविवार है, सोचता हूं ऊर्मीको लेकर डायमण्ड-हारबरकी तरफ घूम आऊँ,—शामके पहले ही लौट आऊँगा।"

शर्मिलाकी छातीके भीतरकी नसें तन्ना उठीं, मारे दर्दके माथेकी चमड़ी सिकुड़ गई। शशाङ्ककी उधर नजर ही नहीं गई। शर्मिलाने सिर्फ एक बार पूछा, "खाने-पीनेका क्या होगा?"

शशाङ्कने कहा, "होटलसे तय कर लिया है।"

एक दिन, ये सब बातें तय करनेका भार जब कि शर्मिलापर था, तब शशाङ्क था उदासीन। आज सब-कुछ उलट-पुलट गया!

ज्यों ही शर्मिलाने कहा कि 'अच्छा, चले जाना', उसी क्षण, जरा भी प्रतीक्षा न करके शशाङ्क लापता हो गया। शर्मिलाकी तबीयत हुई कि वह फूट-फूटकर खूब रो ले। तकियामें मुँह छिपाकर बार-बार कहने लगी, 'अब मेरे जीनेसे फायदा?'

कल रविवार है, इनके ब्याहकी वर्षगाँठका दिन। आज तक कभी भी इस अनुष्ठानमें कोई छेद नहीं पड़ा, बराबर माधुर्यके साथ ही इसका पालन होता आ रहा है। अबकी बार भी, पतिको बगैर कुछ कहे, शर्मिला बिस्तरपर पड़ी-पड़ी सब तैयारियाँ करवा रही थी। इसमें और-कुछ नहीं, सिर्फ इतना ही होता है कि शशाङ्क अपने ब्याहके समयका लाल रंगका बनारसी 'जोड़' पहनता है और शर्मिला पहन लेती है अपने ब्याहकी 'चेली'।[1] और फिर पतिके गलेमें माला पहनाकर, अपने सामने बिठाकर, शर्मिला उन्हें खिलाती-पिलाती है, अगरबत्ती जलाती है और बगलके कमरेमें ग्रामोफोनपर शहनाई बजती रहती है। और-और साल शशाङ्क उसे, पहलेसे बगैर जताये, कोई न

---

१ 'जोड़'—ब्याहके समय पहना जानेवाला कसूमी रंगका रेशमी धोती और दुपट्टा। 'चेली'—दुलहिनके पहननेकी कसूमी रंगकी रेशमी साड़ी।

कोई शौककी चीज खरीद देता था। शर्मिला समझती थी कि इस साल भी जरूर कोई-न-कोई चीज मिलेगी,– कल मालूम हो जायगा।

आज अब उससे कुछ भी नहीं सहा जा रहा है। घरमें कोई नहीं है, बार-बार उसके एक हूक-सी उठती है, 'झूठा, झूठा, झूठा है सब! क्या होगा इस झूठे खेलका!'

रातको नींद नहीं आई। तड़के ही उसे मोटर-गाड़ीकी आवाज सुनाई दी; गाड़ी उसकी खिड़कीके पाससे होकर निकल गई। शर्मिला सिसकने लगी, और अन्तमें रो दी, 'हे भगवान, तुम झूठे हो!'

अबसे बीमारी तेजीसे आगे बढ़ने लगी। दुर्लक्षण जिस दिन अत्यन्त प्रबल हो उठे, उस दिन शर्मिलाने पतिको अपने पास बुला भेजा। शामका वक्त है, कमरेमें उजाला बहुत क्षीण हो चला है, नर्सको उसने इशारा किया कि वह बाहर चली जाय। पतिको अपने पास बिठाकर हाथ पकड़के बोली, "अपने जीवनमें भगवानसे मुझे जो वर मिला था वह तुम हो। किन्तु उसके योग्य शक्ति उन्होंने मुझे नहीं दी। जितना मेरा बूता था•उतना मैंने किया। त्रुटियाँ काफी हुई हैं मुझसे, मुझे माफ कर दो।"

शशाङ्क कुछ कहना चाहता था, उसे रोककर शर्मिलाने कहा, "नहीं, तुम कुछ मत कहो। ऊर्मीको मैं तुम्हारे हाथ सौंपे जाती हूं। वह मेरी अपनी बहन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे, और-भी ज्यादा पाओगे जो मुझसे तुम नहीं पा सके। नहीं, चुप रहो तुम, कुछ मत बोलो। मरते वक्त ही मेरा सौभाग्य पूरा हुआ सही,– तुम्हें मैं सुखी देख सकी।"

नर्सने बाहरसे कहा, "डाक्टर साहब आये हैं।"

शर्मिलाने कहा, "ले आओ।"

बात वहीं रुक गई।

शर्मिलाके एक मामा तरह-तरहके अशास्त्रीय इलाज करानेके लिए कमर कसके खड़े हो गये। फिलहाल वे एक संन्यासीकी सेवामें नियुक्त हैं। जब

डाक्टरोंने कह दिया कि अब कुछ भी करनेको बाकी नहीं, तब वे जिद कर बैठे कि 'हिमालयसे आये-हुए बाबाजीकी जड़ीकी परीक्षा करनी ही होगी।' तिब्बतकी जड़ीका चूरन फाँककर सेरों दूध पीते जाना, बस, और कोई झंझट नहीं।

अनाड़ी चाहे किसी भी तरहका हो, शशाङ्क उसे बरदाश्त न कर सकता था। उसने आपत्ति की। शर्मिलाने कहा, "और कोई नतीजा न सही, कमसे कम मामाको तसल्ली तो मिलेगी।"

देखते-देखते नतीजा निकलने लगा। साँस लेनेमें जो तकलीफ होती थी वह जाती रही।

सात दिन बीते, पन्द्रह दिन बीते, शर्मिला उठके बैठ गई। डाक्टरने कहा, "मौतके धक्केसे ही शरीर अकसर जान हथेलीपर रखके लड़नेको तैयार हो जाया करता है, और फिर आखिरी धक्केमें खुद ही अपने-आपको बचा लेता है।"

शर्मिला बच गई।

फिर वह सोचने लगी, 'यह कैसी आफत है, अब क्या करूं? आखिर जी जाना ही क्या मरनेसे बढ़कर दुखदायी हो जायगा!'

उधर ऊर्मी अपनी चीज-वस्त समेटकर जानेकी तैयारी कर रही है।

यहाँकी पारी उसकी खतम हो गई।

जीजीने उससे आकर कहा, "तू जा नहीं सकेगी।"

"क्यों?"

"हिन्दू-समाजमें क्या बहन-सौतका घर कभी किसीने नहीं सम्हाला?"

"छीः!"

"हुंह, लोकनिन्दा! विधिके विधानसे भी बढ़ जायगी लोगोंके मुँहकी बात!"

उसने शशाङ्कको बुला भेजा। उससे बोली, "चलो, हमलोग नेपाल चले चलें। वहाँके राज-दरबारका तुम्हें काम मिलनेवाला था। कोशिश करनेसे वह मिल जायगा। उस देशमें सामाजिक कोई बात ही नहीं उठेगी।"

शर्मिलाने किसीको दुबिधा करनेका मौका ही नहीं दिया। जानेकी तैयारियाँ होने लगीं।

किन्तु ऊर्मी अब भी विमर्श होकर छिपी-छिपी फिरती है।

शशाङ्कने उससे कहा, "आज अगर तुम मुझे छोड़कर चली जाओ, तो मेरी क्या दशा होगी, सोच देखो!"

ऊर्मीने कहा, "मुझसे कुछ भी नहीं सोचा जाता। तुम दोनों मिलकर जो तय करोगे वही होगा।"

पूरी तैयारियाँ करनेमें कुछ दिन लग गये। उसके बाद जानेका समय जब बिलकुल ही निकट आ पहुँचा तो ऊर्मी कहने लगी, "पाँच-सात दिन ठहर जाओ। काकाजीसे कुछ कामकी बात करनी है, सो कर आऊँ।"

ऊर्मी चली गई।

इसी समय मथुरा बाबू आये शर्मिलाके पास मुँह भारी किये-हुए, बोले, "तुमलोग चले जा रहे हो ऐन वक्तपर ही। तुमसे बातचीत तय हो जानेके बाद तुरत ही मैंने दफ्तर जाकर शशाङ्कके लिए काम अलग छाँट दिया था। अपने साथ मैंने उनके नफा-नुकसानको नहीं लपेटा। हालमें काम समेटनेकी गरजसे शशाङ्क कई दिनोंसे हिसाब समझ रहा था। देखा गया कि तुम्हारे रुपये बिलकुल डूब चुके हैं। ऊपरसे, और-और जो कर्ज चढ़ा-हुआ है उसे चुकानेमें शायद अब मकान भी बेचना पड़े।"

शर्मिलाने पूछा, "सत्यानाश यहाँ तक बढ़ आया और उन्हें मालूम तक नहीं पड़ा!"

मथुरा बाबूने कहा, "सत्यानाश चीज ही ऐसी है जो अकसर अचानक बिजली-सी पड़ती है सिरपर। जिस क्षणमें मारती है उसके पहले क्षण तक कतई मालूम नहीं होने देती। उन्हें मालूम था कि उनके काममें घाटा ही घाटा चल रहा है, उसी वक्त वे आसानीसे सम्हल सकते थे। लेकिन दुर्बुद्धि और किसे कहते हैं! रोजगारकी गलती झटपट सुधार लेनेकी जल्दबाजीमें

कोयलेके बाजारमें तेजी-मन्दी लगाना-खाना शुरू कर दिया। तेजीमें जो खरीदा था, सस्तेमें उसे बेच देना पड़ा। अचानक देखा कि आतिशबाजीकी तरह उसका सब-कुछ जल-उड़ गया, बाकी बची है राख। अब भगवानकी कृपासे नेपालका काम मिल जाय तो दुश्चिन्ता दूर हो।"

शर्मिला गरीबीसे नहीं डरती, बल्कि वह समझती है कि तंगीके दिनोंमें पतिके घरमें उसके लिए जगह और-भी बढ़ जायगी। उसे ऐसा विश्वास है कि गरीबीकी कठिनाईको यथासम्भव नरम करके वह दिन काट सकती है। खासकर जेवर-गहने जो बच रहे हैं उनसे कुछ दिन तो बगैर तकलीफके काम चल सकता है। यह बात भी सङ्कोचके साथ उसके मनमें झाँकी मार रही है कि ऊर्मीके साथ ब्याह हो जानेसे उसकी सम्पत्ति भी तो पतिकी हो जायगी। किन्तु सिर्फ जिन्दगी बिता देना ही तो काफी नहीं है। इतने दिनोंसे उसके पतिने अपनी शक्तिसे अपने हाथसे जो सम्पदा पैदा की, जिसके खातिर अपने हृदयके बहुतसे जबरदस्त हक-दावोंको शर्मिला अपनी इच्छासे बराबर रोकती रही, उन दोनोंकी वही सम्मिलित जीवनकी मूर्तिमान आशा आज मरीचिकाकी तरह बिला गई, इस अगौरवने ही उसकी शानको मिट्टीमें मिला दिया। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'तभी अगर मर जाती तो यह धिक्कार तो न जिन्दा रहता। मेरे भाग्यमें जो था सो तो हो गया, किन्तु गरीबीके अपमानकी यह मर्मभेदी शून्यता क्या किसी दिन पश्चात्ताप न ला देगी उनके मनमें? जिसके मोहमें चूर होकर उन्होंने ऐसा कर डाला, एक दिन आयेगा जब उनका मन शायद इसके लिए उसे क्षमा न कर सके, उसका दिआ-हुआ अन्न उन्हें जहर-सा लगेगा। और अपने मतवालेपनका नतीजा देखकर वे लज्जित होंगे, पर दोष देंगे मदिराको। अन्तमें अगर ऊर्मीकी सम्पत्तिपर निर्भर रहना ही अनिवार्य हो जाय उनके लिए, तो उसकी आत्म-ग्लानि और आत्मावमाननाके क्षोभसे ऊर्मीको वे क्षण-क्षणमें जला-जलाकर मारते रहेंगे।

इधर एक दिन शशाङ्क जब हिसाब साफ करनेकी गरजसे मथुरा बाबूके पास पहुंचा, तो अकस्मात् उसे मालूम हुआ कि शर्मिलाके सब रुपये उसके कारोबारमें डूब चुके हैं। और यह बात शर्मिलाने अब तक उससे नहीं कही। मथुरा-दादाके साथ उसने खुद ही समझौता कर-कराके हिसाब साफ कर दिया है।

शशाङ्कको सब बातें याद आने लगीं। नौकरी छोड़नेके बाद उसने एक दिन शर्मिलासे कर्ज लेकर ही रोजगार शुरू किया था ; और धीरे-धीरे उसे खूब पुख्ता भी कर लिया था। आज फिर बरबाद रोजगारके अन्तमें, उसी शर्मिलाका ही कर्ज सिरपर लादे वह चला है नौकरी करने। इस कर्जके बोझको तो अब वह कभी उतार नहीं सकता। नौकरीकी तनखासे कर्ज चुकानेका स्वप्न कब किसका पूरा हुआ है ?

नेपाल जानेमें दसएक दिनकी और देर है। कल रात-भर शशाङ्कको नींद नहीं आई। तड़के ही वह भड़भड़ाकर उठ बैठा बिछौनेसे। आईनेके सामनेवाली टेबिलपर अचानक जोरका एक मुक्का मारकर बोल उठा, "नहीं जाऊंगा नेपाल।" कड़ी प्रतिज्ञा कर डाली, "हम दोनों ऊर्मीको साथ लेकर कलकत्तेमें ही रहेंगे,— भृकुटि-कुटिल समाजकी क्रूर दृष्टिके सामने ही ! और यहीं रहकर टूटे रोजगारको फिरसे गढ़के तैयार करूँगा मैं, इसी कलकत्तेमें बैठकर।"

जो-जो चीजें साथ जायेंगी और जिन-जिनको यहीं छोड़ जाना है, शर्मिला उनकी एक फेहरिश्त बना रही थी एक कापीपर।

इतनेमें पुकार सुनाई दी उसे, "शर्मिला, शर्मिला !"

झटपट कापी फेंककर शर्मिला पतिके कमरेमें दौड़ी गई। अकस्मात् अनिष्टकी आशङ्कासे उसने काँपते-हुए हृदयसे पूछा, "क्या हुआ ?"

"नहीं जाऊँगा मैं नेपाल। परवा नहीं समाजकी मुझे। यहीं रहूंगा मैं, यहीं रहूँगा।"

"क्यों, क्या हुआ क्या ?"

"काम है।"

वही पुरानी बात, काम है। शर्मिलाकी छाती धुकुर-धुकुर करने लगी।

"शर्मी, तुम यह न समझ लेना कि मैं कायर हूँ। अपनी जिम्मेदारीको छोड़के भाग जाऊँ मैं, इतने बड़े अधःपतनकी कल्पना कर सकती हो तुम?"

शर्मिला पास जाकर पतिका हाथ पकड़के बोली, "क्या हुआ है, खुलासा समझा दो मुझे।"

"फिर मैं कर्जदार हो गया तुम्हारा,—इस बातको ढकनेकी कोशिश मत करो, शर्मी!"

शर्मिलाने कहा, "अच्छा ठीक है।"

शशाङ्कने कहा, "उस दिनकी तरह ही आज फिर कर्ज चुकाने बैठता हूँ मैं। जो डुबोया है उसे खींचकर निकालूँगा ही, मेरी प्रतिज्ञा है, सुन रखो। पहले एक दिन जैसे तुमने मुझपर विश्वास किया था वैसे ही आज फिर तुम मुझपर विश्वास करो।"

शर्मिलाने पतिकी छातीपर माथा रखकर कहा, "तुम भी मुझपर विश्वस करना। काम समझाते रहना मुझे, अपने लायक गढ़ लेना मुझे। आजसे ऐसी शिक्षा दो मुझे, कि, तुम्हारे काममें हाथ बटाने लायक हो जाऊँ मैं।"

बाहरसे आवाज आई, "चिट्ठी है।"

ऊर्मीके हाथकी लिखी दो चिट्ठियाँ हैं। एक है शशाङ्कके नाम, और दूसरी है शर्मिलाके नाम।

शशाङ्ककी चिट्ठीमें लिखा है :—

"मैं अभी बम्बईके रास्तेमें हूँ। विलायत जा रही हूँ। बापूजीकी अन्तिम आज्ञाके अनुसार डाक्टरी सीखकर लौटूँगी वहाँसे। छै-सात साल लग जायेंगे शायद। तुम्हारी घर-गृहस्थीमें घुसकर काफी तोड़-फोड़ कर आई हूँ मैं। इस बीचमें कालका स्रोत अपने हाथसे सब जोड़-जाड़कर ठीक कर देगा। मेरे लिए चिन्ता न करना। तुम्हारे लिए ही चिन्ता रह गई मेरे मनमें।"

और, शर्मिलाकी चिट्ठीमें लिखा था :—

"जीजी, सैकड़ों-हजारों प्रणाम तुम्हारे चरणोंमें। अज्ञानमें अन्धी होकर काफी कसूर किये हैं मैंने, माफ कर देना तुम। मेरी हरकतें तुम्हारी निगाहमें अगर कसूरमें शामिल न हों, तो, इतना ही जानकर मैं सुखी हो जाऊँगी। उससे बढ़कर सुखी होनेकी आशा नहीं रखूँगी मनमें। किसमें सुख है, इसका ही कौनसा ज्ञान है मुझे! और, सुख अगर न हुआ, तो नहीं सही। गलती करनेमें डर लगता है।"

बंगला-रचना : फागुन १९८९

हिन्दी-अनुवाद : श्रावण २००४

घाटकी बात

पत्थरपर यदि वे घटनाएँ लिखी रहतीं, तो कितने ही दिनोंकी कितनी ही बातें तुम मेरी हर सीढ़ीपर पढ़ सकते। पुरानी बातें अगर सुनना चाहते हो तो मेरी इन सीढ़ियोंपर बैठ जाओ। मन लगाकर पानीकी लहरोंकी ओर कान लगाये रहो। अतीत कालकी कितनी ही भूली-हुई बातें सुनाई देंगी।

मुझे और एक दिनकी बात याद आ रही है। वह भी ठीक आजका-सा ही दिन था। आश्विनके आनेमें दो-ही-चार दिन बाकी थे। सवेरेके वक्त नवीन शीतऋतुकी धीमी-धीमी हवा सोकर उठे-हुओंकी देहमें नया जीवन ला रही थी। पेड़ोंके पत्तोंको जरा-जरा सुरसुरी-सी आ रही थी।

गङ्गा ऊपर तक भरी-हुई है, मेरी सिर्फ चार सीढ़ियाँ पानीके ऊपर जाग रही हैं। जलके साथ स्थलकी गलबहियाँ हो रही है। किनारेपर आमके बागके नीचे जहाँ अब अरुईका जङ्गल जम गया है वहाँ तक गङ्गाका पानी आ पहुँचा है। नदीके उस मुहानेके पास तीन पुराने पजाये पानीके भीतर उभरे हुए हैं। धीवरोंकी जो नावें किनारेपर बबूलके पेड़ोंसे बँधी थीं वे सवेरेकी ज्वारके पानीपर तैरती-हुई डगमग-डगमग कर रही हैं, चपल-यौवन ज्वारका पानी इतरा-इतराकर उनके दोनों तरफ छप-छप आघात कर रहा है, मधुर परिहाससे मानो वह उनके कान पकड़कर हिला-हिला जाता है।

भरी गङ्गाके ऊपर शरत्-प्रभातकी जो धूप पड़ी है उसका रंग है कच्चे सोने जैसा, चम्पा-फूलके समान। धूपका ऐसा रंग और किसी भी समय नहीं दिखाई देता। बीचकी रेतीपर उगी-हुई लम्बी-लम्बी काँसपर धूप पड़ रही है। अभी तक काँसके फूल सब खिले नहीं हैं, खिलने शुरू ही हुए हैं।

राम-राम कहते-हुए मल्लाहोंने नावें खोल दीं। सूर्य-लोकमें चिड़ियाँ जैसे पर फैलाकर आनन्दसे नीले आसमानमें उड़ रही हैं, छोटी-छोटी नावें भी ठीक वैसे ही छोटे-छोटे पाल चढ़ाकर सूर्यकी किरणोंमें निकल पड़ी हैं। वे चिड़ियों-जैसी ही मालूम देती हैं, मानो राजहंसोंकी तरह पानीमें तैर रही हों और आनन्दमें आकर दोनों पर आकाशमें फैला दिये हों।

भट्टाचार्यजी ठीक नियमित समयपर पञ्चपात्र हाथमें लिये स्नान करने आये। स्त्रियाँ भी एक-एक दो-दो करके पानी भरने आईं।

यह बहुत ज्यादा दिनोंकी बात नहीं है। हाँ, तुमलोगोंको बहुत दिनोंकी जरूर मालूम हो सकती है, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे कलकी बात हो। मेरे दिन तो गङ्गाके स्रोतके साथ खेलते-खेलते बह जाते हैं, बहुत दिनोंसे एक जगह पड़ा-पड़ा मैं ऐसा ही देख रहा हूँ, इसलिए समय मुझे बहुत लम्बा नहीं मालूम देता। मेरे दिनकी धूप और रातकी छाया रोज मेरी गङ्गापर पड़ती है और रोज उसपरसे पुछकर मिट जाती है, कहीं भी उनकी छबि नहीं दिखाई देती। इसीलिए यद्यपि मैं देखनेमें वृद्ध-सा लगता हूँ, पर, हृदय मेरा हमेशा नया और हरा-भरा रहता है। वर्षोंकी पुरानी स्मृतिकी काईके भारसे आच्छन्न होकर मेरी सूर्य-किरणें मारी नहीं जातीं। हाँ, कभी-कभी एकआध काईका टुकड़ा बहकर आता और देहसे लगकर फिर स्रोतमें बह जाता है। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह काई कुछ है ही नहीं। जहाँ गङ्गाका स्रोत नहीं पहुँचता वहाँ मेरे छेदों-दरारोंमें जो लता या शैवाल या पौधे उत्पन्न हुए हैं वे ही मेरे पुराने होनेके गवाह हैं। उन्हींके पुराने कालको स्नेह-पाशमें बाँधकर मैंने उसे हमेशाके लिए श्यामल मधुर और नवीन बना रखा है। गङ्गा प्रतिदिन मेरे पाससे एक-एक सीढ़ी उतरती जा रही है; और मैं भी एक-एक सीढ़ी करके पुराना होता जा रहा हूँ।

चक्रवर्ती-घरानेके वह जो वृद्ध-पुरुष स्नान करके रामनामी ओढ़े काँपते-हुए माला जपते-जपते घरको लौट रहे हैं, उनकी नानी तब इतनी-सी थी। मुझे याद है, उसका एक खेल था,— वह रोज घीकुवाँरका एक पत्ता गङ्गामें बहा जाती थी। मेरी दाहनी बाँहके पास एक भँवर-सा था, वहींपर उसका वह पत्ता लगातार घूमा करता था, और वह गागर रखकर खड़ी-खड़ी उसीको देखा करती थी। जब देखा कि कुछ दिन बाद वह लड़की बड़ी हो गई और अपनी एक लड़कीको साथ लेकर पानी भरने आई, उसके बाद वह लड़की भी फिर बड़ी हो गई और अपनी साथकी लड़कियोंके पानी उछालकर ऊधम

मचानेपर वह भी उन्हें डाटती-डपटती और भले-मानसों जैसा आचरण करनेकी शिक्षा देती, तब मुझे वही घीकुवाँरकी नाव बहानेकी बात याद आती और बड़ा कुतूहल मालूम होता।

जो बात कहना चाहता हूँ वह आती ही नहीं। एक बात उठाता हूँ तब तक स्रोतमें दूसरी बात बह जाती है। बातें आती हैं, चली जाती हैं, उन्हें थामकर नहीं रख सकता। एक-एक कहानी उस घीकुवाँरकी नावकी तरह भँवरमें पड़कर बिना आराम किये लौट-लौट आती है। इसी तरह आज एक कहानी अपना बोझ लेकर मेरे आस-पास घूम-फिर रही है, अब डूबी कि अब डूबी। उस पत्तेकी तरह ही वह छोटी-सी है, उसमें ज्यादा कुछ नहीं है, खेलके दो फूल हैं। उसे डूबते देखकर कोमल-हृदय बालिका केवल एक लम्बी साँस खींचकर घर लौट जायगी।

मन्दिरके पास जहाँ वह गुसाँइयोंकी गोहालका बाँसका घेरा देख रहे हो, वहाँ एक बबूलका पेड़ था। उसके नीचे हफ्तेमें एक रोज पैंठ लगती थी। तब वहाँ गुसाँइयोंका घर-द्वार नहीं बना था। जहाँ अभी उनका चण्डी-मण्डप है वहाँ मात्र एक फूसकी झोंपड़ी थी।

यह बरगदका पेड़, जो आज मेरी पसलियोंमें हाथ फैलाकर, विकट और लम्बी कठिन उँगलियों-जैसी अपनी जड़ोंसे मेरे विदीर्ण पाषाण-प्राणको मुट्ठीमें दबाये हुए है, यह वृक्ष तब इतना-सा छोटा पौधा था। अपनी हरी-भरी नई पत्तियोंको लिये यह सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। घाम पड़नेपर इसकी उन पत्तियोंकी छाँह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती, इसकी नई जड़ें बच्चोंकी उँगलियोंकी तरह मेरी छातीके आसपास चुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक पत्ती भी तोड़ता तो मुझे पीड़ा होती।

मेरी उमर यद्यपि काफी हो चुकी थी, फिर भी मैं सीधा था। आज मैं पीठकी रीढ़ टूट जानेसे अष्टावक्रकी तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूँ और गहरी त्रिबली-रेखाओंकी तरह मेरे शरीरपर हजारों जगह दरारें भी पड़ गई हैं, मेरे भीतर दुनिया-भरके मेंढक जाड़ेके दिनोंमें लम्बी नींद सोनेकी तैयारियाँ कर रहे हैं, पर उन दिनों मेरी ऐसी दशा नहीं थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजामें

बाहरकी तरफ दो ईटोंकी कमी थी, उस खोहमें एक चिड़ियाने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती और मछलीकी पूंछकी तरह अपनी डबल पूंछको दो-चार बार जल्दी-जल्दी नचाकर सीटी देकर आसमानमें उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुमके घाटपर आनेका समय हो गया।

जिस लड़कीकी बात मैं कह रहा हूं, घाटकी और-और लड़कियाँ उसे कुसुम कहा करती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानीपर जब कुसुमकी छोटी-सी छाया पड़ती, तो मेरे मनमें आता कि किसी तरह उस छायाको मैं पकड़ रखूं। उसमें कुछ ऐसी ही मिठास थी। वह जब मेरे ऊपर पैर रखती और उसके दोनों पैरोंके छड़े जब बजने लगते तब मेरी दरारोंके घास-पौधे मानो पुलकित हो उठते। कुसुम बहुत ज्यादा खेलती-इतराती हो या हँसी-मसखरी करती हो सो बात नहीं, तो भी ताज्जुबकी बात यह थी कि उसकी जितनी भी सखी-सहेलियाँ थीं, उनमें उस जैसी कोई भी न थी। चञ्चल लड़कियोंका उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे 'कुसी' कहती तो कोई 'खुसी' और कोई 'राक्षसी'। उसकी मा उसे कसूमी कहती थी। जब देखो तब कुसुम पानीके किनारे ही बैठी मिलती। पानीके साथ उसके हृदयका मानो कोई गहरा नाता हो। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता।

कुछ दिन बाद कुसुमको फिर घाटपर नहीं देखा। भुवना और सुवर्णा घाटपर रोया करतीं। एक दिन सुननेमें आया कि उनकी कुसी-खुसी-राक्षसीको कोई ससुराल ले गया है। वहाँ सब नये आदमी हैं, नया घर-द्वार है, और नया ही रास्ता और घाट है। पानीके कमलको मानो कोई जमीनपर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे मैं कुसुमकी बात एक तरहसे भूल रहा था। साल-भर बीत गया। घाटकी लड़कियाँ कुसुमकी बात भी ऐसी-कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन शामके वक्त बहुत दिनोंके परिचित पैरोंके स्पर्शसे सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ, शायद कुसुमके पैर हैं ये। वे ही तो हैं, पर उन पैरोंमें

वह सङ्गीत नहीं है। कुसुमके पैरोंका स्पर्श और छड़ोंकी आवाज, हमेशासे मैं दोनोंका एकसाथ अनुभव करता आया हूँ। आज अचानक उन छड़ोंकी आवाज न सुनकर संध्या समयका जल-कल्लोल कैसा-तो उदास-सा सुनाई पड़ने लगा, और आमके बागमें पत्तोंको खड़खड़ाती-हुई हवा कैसा-तो हाहाकार-सा करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेशमें नौकरी करता था। दो-एक दिनके सिवा पतिसे उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। चिट्ठीसे वैधव्यका समाचार पाकर आठ बरसकी उमरमें माथेका सिन्दूर पोंछकर, शरीरके गहने उतारकर, कुसुम फिर अपने देशमें इसी गङ्गाके किनारे लौट आई। पर उसकी सङ्गनियोंमें अब यहाँ कोई भी नहीं रह गई। भुवना सुवर्णा अमला सब सासका घर सम्हालने चली गई हैं। सिर्फ शारदा है, पर, सुनता हूँ कि अगहनमें उसका भी ब्याह हो जायेगा। फिर वह बिलकुल अकेली ही रह जायगी।

जब वह अपने घुटनोंपर सर रखकर मेरी सीढ़ियोंपर चुपचाप बैठी रहती तब मुझे ऐसा मालूम पड़ता कि मानो नदीकी लहरें सब मिलकर हाथ उठाकर उसे 'कुसी-खुसी-राक्षसी' कहकर पुकार रही हों।

बरसात शुरू होते ही गङ्गा जैसे देखते-देखते भर उठती है, कुसुम भी वैसे ही देखते-देखते प्रतिदिन सौन्दर्यसे यौवनसे भरने लगी। किन्तु उसके शान्त स्वभाव, करुण चेहरे और मैले-मोटे कपड़ोंने उसके यौवनपर ऐसा एक छायाका परदा डाल दिया है कि उसका वह खिला-हुआ रूप सबके देखनेमें नहीं आता। इसपर किसीकी दृष्टि ही नहीं जाती कि कुसुम अब बड़ी हो गई है। कम-से-कम मेरी तो नहीं जाती। मैंने कुसुमको उस बालिकासे बड़ी कभी नहीं देखा जिसे शुरूसे देखता आया हूँ। पाँवोंमें उसके छड़े तो न थे, पर जब वह चलती तो मुझे छड़ोंकी आवाज जरूर सुनाई देती।

इसी तरह दस साल बीत गये, गाँवके लोगोंको कुछ मालूम ही न हुआ।

अपने चारों तरफ मैं आज जैसा दिन देख रहा हूँ उस साल भी भादोंके अन्तमें ऐसा ही एक दिन आया था। तुम्हारी पारदादियोंने भी उस दिन

सवेरे उठकर आजकी तरह मधुर सूर्यका मीठा उजाला देखा था। वे जब इतना लम्बा घूँघट खींचकर गागर उठाकर मेरे ऊपर सवेरेके सूर्य-प्रकाशको और भी प्रकाशमय करनेके लिए, पेड़ोंमें होकर गाँवकी ऊँची-नीची सड़कों परसे बातें करती-हुई चली आतीं, तब, तुम्हारे आजके दिनकी सम्भावना भी उनके मनके एक कोनेमें न उठती थी। आज तुम जैसे उनके बारेमें नहीं सोच सकतीं कि तुम्हारी दादियाँ भी सचमुच एक दिन खेलती-फिरती थीं ; आजका दिन जैसा सत्य है, जैसा जीता-जागता है, वह दिन भी ऐसा ही सत्य था ; तुम्हारी तरह करुण हृदय लेकर सुखमें दुखमें वे भी तुम्हारी ही तरह डगमगाती-हुई झूली हैं, वैसे ही आजका यह शरत्‌का दिन, उनसे रहित, उनके सुख-दुःखकी स्मृतिके लेशमात्रसे रहित, आजका यह शरदऋतुके सूर्य-किरणोंका आनन्दपूर्ण सौन्दर्य उनकी कल्पनाके सामने उससे भी अधिक अगोचर था।

उस दिन भोरसे ही उत्तरकी प्रथम पवन मन्द-मन्द बहती हुई खिले-हुए बबूलके फूलोंमेंसे एक-आध फूल उड़ाकर मेरे ऊपर फेंक रही थी। मेरे पत्थरपर थोड़ी-थोड़ी ओसकी बूँदें पड़ी हुई थीं। उस दिन सवेरे न-जाने कहाँसे सौम्य और उज्ज्वल चेहरेवाला, गोरे बदन और लम्बे कदका एक नवीन संन्यासी आया, और मेरे सामनेवाले उस शिव-मन्दिरोंमें ठहर गया। उस संन्यासीके आनेकी बात गाँव-भरमें फैल गई। स्त्रियाँ अपनी-अपनी गागर रखकर बाबाजीको प्रणाम करनेके लिए मन्दिरमें जमा होने लगीं।

मन्दिरमें भीड़ दिनों-दिन बढ़ने लगी। एक तो संन्यासी, दूसरे अनुपम उनका रूप, और उसपर वे किसीकी अवहेलना नहीं करते। बच्चोंको वे गोदमें बिठा लेते और माताओंसे घरके काम-धन्धोंकी बातें पूछते। थोड़े ही दिनोंमें स्त्री-समाजमें बनकी बहुत ज्यादा प्रतिष्ठा हो गई, उनमें वे पुजने लगे। उनके पास पुरुष भी बहुत आते। किसी दिन वे 'भागवत्' पढ़ते तो किसी दिन 'भगवद्‌गीता' की व्याख्या करते, किसी दिन मन्दिरमें बैठकर तरह-तरहकी शास्त्र-चर्चा करते। उनके पास कोई उपदेश सुनने आता तो कोई मन्त्र लेने, और कोई रोगकी दवा पूछने। उनका रूपका क्या पूछना!

जान पड़ता, मानो साक्षात् महादेव ही मनुष्यका शरीर धरकर अपने मन्दिरमें आ बिराजे हों।

संन्यासी प्रतिदिन तड़के ही, सूर्योदयसे पहले, शुकताराको सामने रखकर गङ्गाके पानीमें गले तक डूबकर धीर-गम्भीर स्वरमें सन्ध्या-बन्दन करते, और तब मुझे पानीकी तरङ्गोंका कलकल शब्द न सुनाई देता। उनके उस कण्ठ-स्वरको सुनते-सुनते गङ्गाके पूरब किनारेका आकाश गुलाबी हो उठता, बादलोंके किनारे-किनारे अरुण रेखाएँ पड़ जातीं, अन्धकार मानो खिलनेवाली कलीकी ऊपरकी पपड़ीकी तरह फटकर चारों तरफ झुक जाता और आकाश-सरोवर पर ऊषाकी लाल आभा थोड़ी-थोड़ी करके निकल आती। मानो यह महा-पुरुष गङ्गाके पानीमें खड़ा होकर पूरबकी ओर दृष्टि किये जिस महामन्त्रको पढ़ता जाता उसके एक-एक शब्दके उच्चारणके साथ-साथ नीशीथ रजनीकी माया दूर होती जाती, चाँद और तारे पश्चिमको उतरते जाते और सूर्य पूर्वाकाशमें उदित होता रहता, और इस तरह जगतका दृश्यपट बदल जाता। है कौन यह मायावी! गङ्गा-स्नान करके संन्यासी जब होम-शिखाके समान अपने लम्बे गोरे पुण्य-शरीरको लिये पानीसे निकलता और उसके जटाजूटसे पानी झरता रहता तब नये सूरजकी किरणें उसके समस्त अङ्गोंपर पड़कर चमचमाती रहतीं।

इस तरह और-भी कई महीने बीत गये। चैतके महीनेमें सूर्यग्रहणके समय हजारों आदमी गङ्गा नहाने आये। बबूलके पेड़ोंके नीचे बड़ी-भारी पैंठ लगी। इस मौकेपर संन्यासीके दर्शनके लिए भी बहुतसे आदमी आये। जिस गाँवमें कुसुमकी ससुराल थी वहाँसे भी बहुत-सी औरतें आईं।

सवेरेका समय था। मेरी सीढ़ियोंपर बैठे सन्यासी जप कर रहे थे। उन्हें देखते ही अचानक एक स्त्री अपनी साथिनका कंधा मसककर बोल उठी, "अरी ओ, ये तो अपनी कुसुमके पति मालूम होते हैं!"

एक स्त्री अपने घूँघटको जरा ऊँचा करके कहने लगी, "अरी, हाँ री, ये तो हमारे चटर्जियोंके घरके छोटे बाबू हैं!" और-एकजो थी वह घूँघटका

इतना आडम्बर न रखती थी, उसने कहा, "हाँ री, वैसी ही नाक है, वैसी ही आँखें हैं !" चौथीने संन्यासीकी तरफ बिना देखे ही गहरी साँस लेकर गागरसे पानीको धक्का देकर कहा, "हाय, वह अब कहाँ है ! अब क्या वो कभी आयेगा ! कुसुमके ऐसे भाग्य कहाँ !" तब फिर किसीने कहा, "उनके इतनी दाढ़ी नहीं थी।" कोई बोली, "वे ऐसे दुबले नहीं थे।" कोई कहने लगी, "वे इतने लम्बे कहाँ थे ?" इस तरह बातका लगभग फैसला-सा हो गया, और चर्चा जहाँकी तहाँ दब गई।

गाँवके और सबोंने संन्यासीको देखा था, सिर्फ कुसुमने नहीं देखा। ज्यादा आदमियोंका समागम होते रहनेसे कुसुमने मेरे पास आना बिलकुल छोड़-सा दिया था। एक दिन सन्ध्याके बाद पूनोंका चाँद आकाशमें उठते देख शायद हम दोनोंका पुराना सम्बन्ध उसे याद आ गया।

उस समय घाटपर और-कोई नहीं था। झींगुर अपनी 'झीं-झीं' की तान अलाप रहे थे। मन्दिरके घण्टा-घड़ियालोंकी ध्वनि भी कुछ देर पहले बन्द हो गई थी, उसकी आखिरी गूँजकी तरंगें क्षीणतर होकर उस पारके छायामय पेड़ोंकी तरह बिलीन हो गईं। धीरे-धीरे शुभ्र चाँदनीमे जल-स्थल और आकाश भर गया; मेरी सीढ़ियोंपर ज्वारका पानी छपछप करने लगा। कुसुम आई, और मेरे ऊपर अपनी छाया डालकर बैठ गई। हवा थम चुकी है। पेड़-पौधे भी चुपकी साध गये हैं। कुसुमके सामने है गङ्गाकी छातीपर बेरोक-टोक फैली-हुई चाँदनी। अँधेरा उसके पीछे, आस-पास, पेड़-पत्तियोंमें, मन्दिरकी छायामें, टूटे-फूटे मकानोंकी भीतोंमें, तालाबके किनारे और ताड़के पेड़ोंके नीचे अपना मुँह छिपाये दुबककर बैठ गया है। छतिवनके पेड़ोंकी डालियोंपर चमगादड़ लटक रहे हैं। बस्तीके पास गीदड़ोंकी जोरोंकी चीख उठी और थम गई।

संन्यासी धीरे-धीरे मन्दिरके भीतरसे बाहर निकल आये। घाटपर आकर दो-एक सीढ़ी उतरते ही उनकी दृष्टि कुसुमपर पड़ी। अकेली स्त्रीको ऐसे एकान्त स्थानमें बैठी देख वे लौटना ही चाहते थे कि इतनेमें सहसा कुसुमने मुँह उठाकर पीछेकी ओर देखा।

उसके सिरका कपड़ा पीछेको खिसक गया। खिलते-हुए फूलपर जैसे चाँदनी पड़ती है, मुँह उठाते ही कुसुमके मुँहपर वैसे ही चाँदनी आ पड़ी। उसी क्षण दोनोंने एक-दूसरेको देखा, मानो जान-पहचान हो गई। ऐसा लगा जैसे पहले जन्मकी जान-पहचान हो।

सिरके ऊपरसे उल्लू बोलता-हुआ उड़ गया। उस आवाजसे चौंककर कुसुमने होश सम्हाला, सिरका कपड़ा खींच लिया; और उठकर संन्यासीके पैरोंके पास जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

संन्यासीने आशीर्वाद देकर पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"कुसुम।"

उस रातको फिर कोई बात नहीं हुई। कुसुमका घर पास ही था। वह धीरे-धीरे अपने घर चली गई। उस रातको संन्यासी बहुत देर तक मेरी सीढ़ियोंपर बैठे रहे। अन्तमें पूरबका चाँद जब पश्चिममें पहुँच गया, संन्यासीके पीछेकी छाया जब समाने आ गई तब वे उठकर मन्दिरमें चले गये।

उसके दूसरे दिनसे मैं बराबर देखा करता कि कुसुम रोज आती और संन्यासीकी पदधूलि ले जाती। संन्यासी जब शास्त्रकी व्याख्या करते तब वह एक तरफ खड़ी होकर सब सुनती। संन्यासी प्रातःसन्ध्या कर चुकनेके बाद कुसुमको बुलाकर उसे धर्मकी बातें सुनाते। सब बातें क्या कुसुम समझ सकती थी? किन्तु, वह खूब मन लगाकर चुपचाप बैठी-बैठी सब सुना करती। संन्यासी उसे जैसा उपदेश देते, वह हूबहू वैसे ही उसका पालन करती। रोजमर्रा वह मन्दिरका काम करती, देव-सेवामें जरा भी आलस्य नहीं करती, पूजाके लिए फूल चुनती, गङ्गासे पानी भरकर मन्दिर धोती।

संन्यासी उसे जितनी भी बातें बताते, मेरी सीढ़ियोंपर बैठकर वह उन्हींको सोचा करती। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि दूर तक फैलने लगी। उसने अब तक जो देखा नहीं था, अब वह उसे देखने लगी। जो पहले सुना नहीं था उसे अब वह सुनने लगी। उसके प्रशान्त चेहरेपर जो एक म्लान छाया थी वह दूर हो गई। और, प्रभात-सूर्यके प्रकाशमें जब वह भक्तिभावसे संन्यासीके पैरोंके पास आकर लोट जाती तब वह देवतापर चढ़ाये-हुए ओससे

धुले पूजाके फूलके समान दीखती, और एक निर्मल प्रसन्नता उसके समस्त शरीरको प्रकाशमय बना देती।

शीतऋतुके आखिरी दिन थे। ठण्डी-ठण्डी हवाके साथ किसी-किसी दिन सन्ध्याके समय सहसा दक्षिणसे वसन्तकी हवा आ मिलती है, और तब आकाशसे ओसका भाव बिलकुल दूर हो जाता है। बहुत-दिन बाद गाँवमें बंशी बजने लगी और गीतकी ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मल्लाह लोग स्रोतमें नाव बहाकर डाँड़ खेना बन्द करके श्याम-कन्हैयाके गीत गाने लगे। अचानक चिड़ियोंने इस डालीसे उस डालीपर फुदक-फुदककर परम उल्लाससे उत्तर-प्रत्युत्तर करना शुरू कर दिया। ऋतु अब ऐसी ही आ गई है। वसन्तकी हवा लगनेसे पाषाण-हृदयके भीतर भी मानो कुछ-कुछ यौवनका सञ्चार हो उठा। मेरे हृदयके भीतरके उस नवयौवनोछ्वासको आकर्षित करके ही मानो मेरी लताएँ और घास-पौधे देखते-देखते फूलोंसे लदे जा रहे हैं। इस समय कुसुम क्यों नहीं दिखाई देती? कुछ दिनसे वह मन्दिरमें भी नहीं आती, संन्यासीके पास भी उसे नहीं देखता।

इस बीचमें क्या हो गया, मैं कुछ समझ न सका।

कुछ दिन बाद, एक दिन सन्ध्याके समय मेरी ही सीढ़ियोंपर संन्यासीके साथ कुसुमकी भेंट हुई।

कुसुमने सिर झुकाकर कहा, "प्रभु, आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ, तुम दिखाई क्यों नहीं देतीं? आजकल देव-सेवामें तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रही हो?"

कुसुम चुपचाप खड़ी रही।

"मुझसे तुम अपने मनकी बात खोलकर कहो।"

कुसुमने मुँह फेरकर कहा, "प्रभु, मैं पापिन हूं, इसीलिए ऐसी लापरवाही हो रही है मुझसे।"

संन्यासीने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरमें कहा, "कुसुम, तुम्हारे हृदयमें अशान्ति पैदा हो गई है,—मैं यह समझ रहा हूं।"

कुसुम मानो चौंक उठी। उसने शायद समझा कि संन्यासीने न-जाने

कितना समझ लिया होगा ! उसकी आँखें धीरे-धीरे डबडबा आईं, वह वहीं पर बैठ गई, और आँचलसे मुँह ढककर सीढ़ीपर संन्यासीके पैरोंके पास बैठी-बैठी रोने लगी।

संन्यासीने कुछ पीछे हटकर धीरेसे कहा, "अपनी अशान्तिकी बात तुम मुझसे साफ-साफ कहो,—मैं तुम्हें शान्तिका मार्ग बताऊँगा।"

कुसुमने अटल भक्तिके स्वरमें कहना शुरू किया, किन्तु बीच-बीचमें वह रुक-रुक जाती, कहीं-कहीं बात ही न सूझती। कहने लगी, "आपकी आज्ञा है तो मैं जरूर कहूँगी। पर, अच्छी तरह कह नहीं सकूँगी। आप तो शायद मन-ही-मन सब-कुछ समझ रहे होंगे। प्रभु, मैं एक जनेको देवताके समान भक्ति करती थी, मैं उनकी पूजा करती थी। उस आनन्दसे मेरा हृदय भर गया था। एक दिन रातको स्वप्नमें देखा, मानो वे मेरे हृदयके स्वामी हैं, न-जाने कहाँ एक बकुल-वनमें बैठकर अपने बायें हाथमें मेरा दाहिना हाथ लिये मुझे वे प्रेमकी बातें सुना रहे हैं। और यह बात मुझे जरा भी असम्भव या आश्चर्यकी नहीं मालूम हुई। सपना टूट गया, पर, उसका आवेश नहीं गया। उसके दूसरे दिन जब उन्हें देखा, तो मैं उन्हें पहले-जैसा न देख सकी। मेरे मनमें बार-बार उसी सपनेकी तसवीर नाचने लगी। डरसे मैं दूर भाग गई, पर, वह तसवीर मेरे साथ-ही-साथ रही। तबसे मेरे हृदयकी अशान्ति दूर नहीं हो रही है, प्रभो, मेरा सब-कुछ अन्धकारमय हो गया है।"

कुसुम जब आँसू पोंछती-हुई बात कह रही थी, तब मैं अनुभव कर रहा था कि संन्यासीने आपने दाहिने पैरसे मेरा पत्थर जोरसे दबा रखा है।

कुसुमकी बात खतम होनेपर संन्यासीने कहा, "जिसे तुमने सपनेमें देखा था वह कौन था, बताओ ?"

कुसुमने हाथ जोड़कर कहा, "सो मैं नहीं बता सकूंगी।"

संन्यासीने कहा, "तुम्हारी भलाईके लिए ही पूछ रहा हूँ,—कौन है वह साफ-साफ बताओ ?"

कुसुमने अपने कोमल ओठोंको जोरोंसे दबाकर, हाथ जोड़कर, धीरेसे कहा, "बताना ही पड़ेगा ?"

संन्यासीने कहा, "हाँ, बताना ही पड़ेगा।"

कुसुम उसी क्षण बोल उठी, "तुम्हीं तो हो, प्रभु!"

कुसुमके ये अपने ही शब्द ज्योंही उसके कानमें पड़े त्यों ही वह मूर्छित होकर मेरी गोदमें गिर पड़ी। संन्यासी पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहे।

बेहोशी दूर होते ही कुसुम उठकर बैठ गई, और तब संन्यासीने धीरे-धीरे कहा, "तुमने मेरी सभी बातें पालन की हैं, और भी एक बात पालन करनी होगी। मैं आज ही यहाँसे जा रहा हूँ। मेरे साथ अब तुम्हारी कभी भी भेंट न हो सकेगी। मुझे तुम भूल जाओ। बताओ, इतनी तपस्या तुम करोगी?"

कुसुम उठकर खड़ी हो गई, और संन्यासीके मुँहकी ओर देखकर धीर स्वरमें बोली, "प्रभो, ऐसा ही होगा।"

संन्यासीने कहा, "तो मैं जाता हूँ।"

कुसुमने और-कुछ न कहके उन्हें प्रणाम किया, और उनके पैरोंकी धूल सिरसे लगाई। संन्यासी चले गये।

कुसुमने कहा, "वे आज्ञा दे गये हैं, उन्हें भूलना होगा।" कहती-हुई वह धीरे-धीरे गङ्गाके पानीमें उतर गई।

बचपनसे जिसने इसी पानीके किनारे दिन बिताये हैं, श्रान्तिके समय यह पानी ही यदि हाथ बढ़ाकर उसे गोदमें न लेगा तो और कौन लेगा?

चाँद अस्त हो गया, रात्रि घोर अन्धकारमय हो गई। अकस्मात् पानीमें एक शब्द-सा सुनाई दिया; और-कुछ भी समझमें नहीं आया। अन्धकारमें हवा सनसनाने लगी। हवाने शायद यह सोचकर कि किसीको कुछ दीख न जाय, फूँक मारकर आकाशके तारोंको बुझा देना चाहा।

मेरी गोदमें जो खेला करती थी वह आज अपना खेल खतम करके मेरी गोदमेंसे चुपकेसे खिसक गई, और मैं जाना भी न पाया।

बंगला-रचना : कार्तिक १९४१
हिन्दी-अनुवाद : जेठ २००४

कंकाल

इम तीनों बचपनके साथी जिस कमरेमें सोते थे उसके बगलके कमरेमें दीवारपर एक नर-कङ्काल टँगा रहता था। रातको हवासे उसकी हड्डियाँ खड़खड़ाया करती थीं। दिनमें हमें उन हड्डियोंको हिलाना पड़ता था। कारण हमलोग तब पंडितजीसे 'मेघनाद-वध' काव्य और कैम्बेल-स्कूलके एक विद्यार्थीसे अस्थि-विद्या पढ़ा करते थे। हमारे बुजुर्ग चाहते थे कि हमलोगोंको वे यकायक सर्वविद्यामें पारदर्शी कर डालें। उनका वह इरादा कहाँ तक पूरा हुआ, यह बात जो हमें जानते हैं उनके सामने प्रकट करना फजूल है, और जो नहीं जानते उनसे छिपा जाना ही अच्छा है।

उसके बाद बहुत समय बीत चुका है। इस बीचमें उस घरसे कङ्काल और हमलोगोंके दिमागसे अस्थि-विद्या निकलकर न-जाने कहाँ चली गई, कुछ पता नहीं।

थोड़े दिन हुए, एक दिन रातको, किसी कारणसे और-कहीं जगह न मिलनेसे मुझे उसी कमरेमें सोना पड़ा जिसमें किसी जमानेमें कङ्काल था। आदत न होनेसे नींद नहीं आई। करवट बदलते-बदलते गिरजाकी घड़ीमें बड़े-बड़े घण्टे लगभग सभी बज गये। इतनेमें, घरके एक कोनेमें जो तेलका दीआ जल रहा था वह भी पाँचएक मिनट बुत-बुत करके बिलकुल ही बुझ गया। इसके कुछ पहले हमारे घर दो-एक मौत हो चुकी थी। इसीसे इस दीआके बुझते ही मौतकी बात याद आ गई। मालूम हुआ, यह जो आधा रातके वक्त एक दीपशिखा चिरअन्धकारमें बिला गई, प्रकृतिके लिए जैसी यह है वैसी ही मनुष्यकी छोटी-छोटी प्राणशिखाएँ हैं, जो कभी दिनमें और कभी रातमें सहसा बुझकर हमारी स्मृतिसे सदाके लिए मिट जाती हैं।

क्रमशः उस कङ्कालकी बात याद आ गई। उसकी जीवित अवस्थाके विषयमें कल्पना करते-करते सहसा ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई चेतन पदार्थ अन्धकारमय घरमें दीवार टटोलता-हुआ मेरी मशहरीके चारों तरफ घूम रहा हो। और उसकी घनी-घनी साँस मुझे साफ-साफ सुनाई देने लगी। ऐसा

लगा जैसे वह कोई खोई-हुई चीज ढूँढ़ रहा हो, वह मिल नहीं रही हो और उसके लिए तेजीके साथ घर-भरमें घूम रहा हो। मैंने निश्चित समझ लिया कि यह सब-कुछ मेरे निद्राहीन गरमाये-हुए मस्तिष्ककी कल्पना है। और मेरे ही माथेमें भन्नाता-हुआ जो खून दौड़ रहा है वही पैरोंकी आहट-जैसा सुनाई दे रहा है। किन्तु फिर भी, डरके मारे रोंगटे खड़े हो उठे। इस फजूलके डरको जबरदस्ती दूर करनेके इरादेसे मैं बोल उठा, "कौन है?"

पैरोंकी आहट मेरी मशहरीके पास आकर थम गई, और एक जवाब सुन पड़ा, "मैं हूँ। मेरा वह कङ्काल कहाँ गया, —उसे ढूँढ़ने आई हूँ।"

मैंने सोचा कि अपनी काल्पनिक सृष्टिके आगे डरना-डराना कुछ मानी नहीं रखता। और, गाव-तकियेसे जोरसे चिपटकर मैंने चिर-परिचितकी तरह सहज स्वरमें कहा, "वाह, आधी रातके वक्त काम तो खूब ढूंढ़ निकाला है! अब उस कङ्कालसे तुम्हें मतलब?"

अँधेरेमें मशहरीके बहुत ही पास आकर उसने कहा, "खूब कहा! अरे, मेरी छातीकी हड्डियाँ तो उसीमें थीं! मेरा छब्बीस वर्षका यौवन तो उसीके चारों ओर विकसित हुआ था! एक बार देखनेकी तबीयत नहीं होती?"

मैंने उसी वक्त कहा, "हाँ, बात तो ठीक है। तो तुम ढूंढ़ो, जाओ। मैं जरा सोनेकी कोशिश करूँ।"

उसने कहा, "तुम अकेले ही हो क्या? तो जरा बैठ जाऊँ। आज जरा गप-शप होने दो। आजसे पैंतीस साल पहले मैं भी आदमियोंके पास बैठकर आदमियोंकी तरह ही गप-शप किया करती थी। ये पैंतीस साल मैंने सिर्फ श्मशानकी हवामें हू-हू करते-हुए बिताये हैं। आज तुम्हारे पास बैठकर और-एक बार आदमियोंकी तरह गप-शप कर लूँ।"

मुझे ऐसा लगा जैसे वह मशहरीके पास आकर बैठ गई। और कोई चारा न देख मैंने जरा उत्साहके साथ ही कहा, "हाँ, यह ठीक है। ऐसा कोई किस्सा छेड़ो जिससे तबीयत खुश हो जाय।"

उसने कहा, "सबसे बढ़कर मजेका किस्सा सुनना चाहते हो तो मैं अपनी जिन्दगीका किस्सा सुनाती हूँ, सुनो।"

गिरजेकी घड़ीमें टन्-टन् दो बजे। वह कहने लगी, "जब मैं मनुष्य थी और छोटी थी तब एक आदमीसे मैं यमकी तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछलीको काँटेमें फँसा लेनेपर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसे ही तड़पती थी। मुझे तब ऐसा लगा जैसे कोई एक बिलकुल अपरिचित आदमी स्नेह-जलसे भरे मेरे जन्म-जलाशयसे मुझे काँटेमें फँसाकर खींचे लिये जा रहा हो, किसी तरह उसके हाथसे छुटकारा नहीं मिलनेका। ब्याहके दो महीने बाद ही मेरे पतिकी मृत्यु हो गई। घरवालों और नाते-रिश्तेदारोंने मेरी तरफसे बहुत-कुछ शोक-विलाप किया। मेरे ससुरने बहुतसे लक्षण मिलाकर साससे कहा, 'शास्त्रोंमें जिसे विषकन्या कहा गया है, मैं वही हूँ।' यह बात मुझे अभी तक बिलकुल स्पष्ट याद है। – सुनते हो, कहानी कैसी लग रही है ?"

मैंने कहा, "अच्छी है, कहानीका प्रारम्भ तो बड़े मजेका है।"

"तो सुनो। आनन्दसे मायके लौट आई। क्रमशः उमर बढ़ने लगी। लोग मुझसे छिपाते थे, पर, मैं खूब अच्छी तरह जानती थी कि मुझ-जैसी रूपवती जहाँ-तहाँ नहीं मिलती। – क्यों तुम्हारी क्या राय है ?"

"हो सकता है। लेकिन, मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

मेरा जवाब सुनते ही वह ठहाका मारकर हँस पड़ी ; और फिर कहने लगी, "दिखा नहीं ! क्यों, मेरा वह कङ्काल ? हिःहिःहिःहिः, मैं तुमसे मजाक कर रही हूँ ! तुम्हारे सामने मैं कैसे साबित करूँ कि मेरी उन आँखोंकी खोखली हड्डियोंके अन्दर कमान-सी खिंची-हुई, भौंरा-सी काली, बड़ी-बड़ी दो आँखें थीं, और उन रंगीन ओठोंपर जो मीठी-मीठी मुसकान थी उसकी अब इन उघड़े-हुए दाँतोंकी विकट हँसीके साथ किसी तरह तुलना ही नहीं हो सकती। मैं कैसे समझाऊँ कि इन्हीं इनी-गिनी लम्बी सूखी हड्डियोंके ऊपर इतना लालित्य था और यौवनकी इतनी कठिन-कोमल सुघड़ परिपूर्णता प्रतिदिन खिलती रहती थी कि तुमसे कहनेमें मुझे हँसी भी आती है और क्रोध भी। मेरे उस शरीरके कंकालसे अस्थि-विद्या सीखी जा सकती है, यह बात उस जमानेमें बड़े-बड़े डाक्टरोंके दिमागमें भी न आती थी। मुझ

खूब याद है, एक डाक्टरने अपने एक खास मित्रसे मुझे 'कनक-चम्पा' बताया था। उसके मानी यह थे कि दुनियाके और-सब आदमी अस्थि-विद्या और शरीर-तत्त्वके दृष्टान्त बन सकते हैं, किन्तु, मैं ही सिर्फ एक ऐसी हूँ कि जिसे खुशबूदार खूबसूरत फूलके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। कनक-चम्पाके भीतर क्या कोई कङ्काल होता है ?

"मैं जब चलती तो मुझे ऐसा लगता जैसे हीरेको हिलानेसे उसके चारों ओर प्रकाश चमचमता है, मेरी देहके जरासे हिलने-डुलनेमें वैसी ही सौन्दर्य की चमक मानो अनेक स्वाभाविक हिल्लोलोंमें चारों ओर बिखरी पड़ती हो। कभी-कभी मैं बहुत देर तक अपने हाथ देखा करती ; देखती कि संसारके समस्त उद्धत पौरुषके मुँहमें लगाम डालकर मधुरतासे उन्हें वशमें कर सकते थे, ऐसे हाथ थे वे ! सुभद्रा जब अर्जुनको लेकर बड़े दर्पके साथ अपने विजय-रथको अश्चर्य-चकित तीन-लोकके बीचमें होकर चला ले गई थीं, तब शायद उनके ऐसी ही दो अस्थूल सडौल भुजाएँ, गुलाबी हथेलियाँ और लावण्य-शिखाके समान उँगलियाँ थीं !

"किन्तु, हाय, मेरे उस निर्लज्ज निरावरण निराभरण चिरवृद्ध कङ्कालने तुम्हारे समाने झूठी गवाही दी है मेरी ! तब मैं बेबस थी, कुछ बोल न सकती थी, इसीलिए संसार-भरमें मेरा सबसे ज्यादा क्रोध तुम्हींपर है। ऐसी मनमें आती है कि अपने उस सोलह वर्षके जीवित और यौवनके तापसे उत्तप्त आरक्तिम रूपको एक बार तुम्हारी आँखोंके सामने रख दूं। बहुत दिनोंके लिए तुम्हारी आँखोंकी नींद छुड़ा दूं, तुम्हारी अस्थि-विद्याको अस्थिर करके देश-निकाला दे दूँ !"

मैंने कहा, "तुम्हारी देह होती, तो मैं तुम्हारी देह छूकर कहता कि उस विद्याका लेशमात्र भी अब मेरे मस्तिष्कमें नहीं है। तुम्हारा वह भुवन-मोहन पूर्ण-यौवनका रूप निशीथ रात्रिके इस अन्धकार-पटपर जाज्वल्यमान होकर प्रस्फुटित हो उठा है। बस, अब ज्यादा न कहलाओ।"

वह कहने लगी, "मेरी कोई सखी-सहेली न थी। भइयाने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वे ब्याह न करेंगे। घरमें सिर्फ मैं अकेली थी। बगीचेमें पेड़के

नीचे बैठी-बैठी मैं सोचा करती, तमाम दुनिया मुझसे ही प्रेम करती है। आकाशके सारे तारे मुझे ही देखा करते हैं, हवा छलसे बार-बार गहरी साँसके रूपमें मेरी ही बगलसे निकल जाया करती है। जिस घासपर मैं पैर फैलाये बैठी हूँ उसमें अगर चेतना होती तो वह भी मुझे पाकर फिरसे अचेतन हो जाती। मुझे मालूम होता, संसारके सारे युवक उस घासके रूपमें दल बाँधकर चुपचाप मेरे पैरोंके पास खड़े हैं। हृदयमें बिना कारण न-जाने कैसी-तो एक वेदना-सी अनुभव करती रहती। मेरे भइयाके मित्र शशिशेखर जब मेडिकल-कालेजकी आखिरी परीक्षा पास कर चुके, तो वे ही हमारे घरके डाक्टर हुए। उन्हें मैं पहले ओटमेंसे छिपकर बहुत बार देख चुकी थी। भइया बड़े अजीब आदमी थे, दुनियाको मानो वे अच्छी तरह देख न सकते थे। दुनिया उनके लिए मानो काफी खुली-हुई न थी, इसलिए हटते-हटते वे बिलकुल उसके एक किनारेपर जा लगे थे।

"उनके मित्रोंमें बस एक शशिशेखर ही थे। इसलिए बाहरके युवकोंमें मैं सिर्फ शशिशेखरको हो हमेशासे देखती आई थी। और, जब मैं शामके वक्त फूलके पेड़के नीचे साम्राज्ञीकी तरह आसन जमाकर बैठती तब ऐसा लगता जैसे संसारकी सम्पूर्ण पुरुष-जाति शशिशेखरकी मूर्ति धारण करके मेरे चरणोंके पास आकर आश्रय लेना चाहती है। —सुन रहे हो? कहानी कैसी मालूम देती है?"

मैंने एक गहरी साँस लेकर कहा, "मालूम होता है, मैं अगर शशिशेखर होकर पैदा होता तो अच्छा रहता।"

वह कहती गई, "पहले पूरी सुन तो लो। एक दिनकी बात है, बदलीका दिन था, मुझे बुखार चढ़ा। डाक्टर मुझे देखने भीतर आये। यही पहली मुलाकात थी।

"मैं खिड़कीकी तरफ मुँह किये लेटी थी, ताकि सूर्यास्तकी लाल आभा चेहरेपर पड़े और उसका फीकापन जाता रहे। डाक्टरने घरमें घुसते ही मेरे मुंहकी ओर एक बार देखा, और मैंने भी मन-ही-मन अपनेको डाक्टर मानकर कल्पनासे अपने मुँहको देखा। शामके उस गुलाबी उजालेमें नरम तकियेपर

लापरवाहीसे पड़ा-हुआ मेरा वह चेहरा मुझे कुछ मुरझाया हुआ-सा कोमल फूलके समान दीख पड़ा, बिखरे-हुए घुँघरवाले बाल माथेपर उड़ रहे थे और लज्जासे झुकी-हुई मेरी बड़ी-बड़ी आँखोंके पलक गालोंपर छाया डाल रहे थे।

"डाक्टरने नम्रताके साथ मुलायम स्वरमें भइयासे कहा, 'एक बार नाड़ी देखनी होगी।' मैंने रेशमी फर्दमेंसे अपना थका-हुआ गोलमटोल गोरा हाथ निकाल दिया। एक बार हाथको निहारकर देखा, उसमें अगर नीले रंगकी काँचकी चूड़ियाँ पहने होती तो वह और भी अच्छा लगता। रोगीका हाथ थामकर नाड़ी देखनेमें डाक्टरकी ऐसी चञ्चलता मैंने पहले कभी नहीं देखी। उन्होंने, छूनेसे डरती और काँपती-हुई उँगलियोंसे, मेरी नाड़ी देखी। वे मेरे बुखारकी गरमी समझ गये और मैंने भी उनकी अन्तरकी नाड़ी कैसी चल रही है, इसका कुछ-कुछ आभास पाया। – क्यों, विश्वास नहीं होता?"

मैंने कहा, "अविश्वासका तो कोई कारण नहीं देखता। आदमीकी नाड़ी हरवक्त एकसी नहीं चलती।"

वह कहने लगी, "हूं! क्रमशः और भी दो-चार बार रोगी और आरोग्य होनेके बाद एक दिन मैंने देखा कि मेरी संध्याकालकी मानस-सभामें संसारके करोड़ों पुरुषोंकी संख्या घटते-घटते अन्तमें वह 'एक' पर आकर ठहर गई। मेरी दुनिया करीब-करीब सूनी-सी हो गई। संसारमें सिर्फ एक डाक्टर और एक रोगी बच रहा।

"शाम होते ही मैं चुपकेसे उठकर बसन्ती रंगकी साड़ी पहनती, अच्छी तरह जूड़ा बाँधती, उसपर एक बेलेकी माला लपेटती, और फिर एक दर्पण लेकर बगीचेमें जा बैठती। क्यों? अपनेको देख-देखकर क्या तृप्ति नहीं होती थी? सचमुच नहीं होती थी। क्योंकि मैं तो खुद अपनेको नहीं देखती, मैं तब अकेली बैठ कर दो हो जाती। मैं तब डाक्टर बनकर अपनेको खूब निहार-निहार कर देखती। देखकर मोहित हो जाती, खूब प्रेम करती, लाड़-प्यार करती, और फिर भी हृदयके भीतर गहरी साँस उठ-उठकर शामकी आँधीकी तरह साँय-साँय करके हाहाकार कर उठती।

तबसे मैं अकेली नहीं रही, जब चलती तो नीचेको निगाह कर निरख-

निरखके देखती कि पैरोंकी उँगलियाँ जमीनपर कैसे पड़ती हैं, और सोचती, इन पैरोंका रखना हमारे नवीन परीक्षोत्तीर्ण डाक्टरको कैसा लगता होगा! खिड़कीके बाहर दोपहरी धाँय-धाँय करती रहती, एक तरहका गरम सन्नाटा छा जाता, कहीं भी कोई शोर-गुल नहीं, बीच-बीचमें एकआध चील बहुत दूर आकाशमें चींचीं करती-हुई उड़ जाती, और हमारे बगीचेकी चहारदीवारीके बाहर खिलौनेवाला गानेके स्वरमें 'चहिए खिलौना चहिए, चूड़ी चहिए' बोल जाता। मैं तब अपने हाथसे बिछौना करके उसपर एक धुली-हुई सफेद महीन चादर बिछाकर सो जाती, और अपनी एक उघड़ी-हुई बाँहको कोमल बिछौने पर अनादरसे रखकर सोचती, इस हाथको इस ढंगसे रखते-हुए मानो किसीने देख लिया, मानो किसीने दोनों हाथोंसे उसे उठा लिया, मानो किसीने उसकी गुलाबी हथेलीपर चुम्बन रख दिया, और मानो धीरे-धीरे वह लौटा जा रहा है। – सुनते हो, मान लो, यहींपर कहानी खतम हो जाय तो कैसा रहे?"

मैंने कहा, "अच्छा ही रहे। जरा अधूरी तो रह जायगी, पर मन ही मन पूरी करनेमें बाकीकी रात मजेमें कट जायगी।"

उसने कहा, "हूँ! किन्तु, इससे कहानी बहुत गम्भीर हो जायगी। इसका मजाक फिर कहाँ रहेगा? इसके भीतरका 'कङ्काल' अपने सारे दाँत किटकिटाता-हुआ कहाँ दिखाई देगा?

"हाँ, फिर उसके बाद सुनो। जरा प्रैक्टिस बढ़ते ही डाक्टरने हमारे मकानके नीचे एक दवाखाना खोल दिया। तब फिर मैं उनसे हँसी-हँसीमें कभी दवाकी बात, कभी जहरकी बात, कभी आदमी आसानीसे कैसे मर सकता है, यही सब ऊटपटाँग बातें पूछती रहती। डाक्टरी-विषयोंमें डाक्टरका मुँह खुल जाता। सुनते-सुनते मौत मानो परिचित घरके आदमीकी तरह हो गई। फिर तो मुझे सिर्फ दो ही चीजें दुनियामें दीखने लगीं, प्यार और मौत। –सुनो, मेरी कहानी अब करीब-करीब खतम हो चली है, अब ज्यादा देर नहीं है।"

मैंने मुलायम स्वरमें कहा, "रात भी करीब-करीब खतम हो आई।"

वह कहने लगी, "हाँ तो, कुछ दिनोंसे देखा कि डाक्टर साहब बड़े

अनमने-से रहने लगे हैं, और मेरे सामने तो बहुत ही झेंपते हैं। एक दिन देखा कि वे कुछ ज्यादा ठाट-बाटसे सज-धजकर भइयाके पास आये और उनसे बग्घी माँगने लगे। रातको कहीं जायेंगे। मुझसे रहा न गया। भइयाके पास जाकर बातों-ही-बातोंमें मैंने पूछा, 'भइया, डाक्टर आज बग्घी लेकर कहाँ जा रहे हैं ?' संक्षेपमें भइयाने कहा, 'मरने।' मैंने कहा, 'बताओ न, भइया ?' उन्होंने पहलेकी अपेक्षा कुछ-और खुलासा करके कहा, 'ब्याह करने।' मैंने कहा, 'सचमुच ?' और खूब हँसने लगी।

"धीरे-धीरे मालूम हुआ कि इस ब्याहमें डाक्टरको बारह हजार रुपये मिलेंगे। किन्तु, मुझसे यह बात छिपाकर मुझे अपमानित करनेके क्या मानी ? मैंने क्या उनके पैरों पड़कर कहा था कि ऐसा काम करनेसे मैं छाती फाड़कर मर जाऊँगी ? पुरुषोंका विश्वास नहीं। दुनियामें मैंने सिर्फ एक ही पुरुष देखा है ; और एक ही क्षणमें उसके बारेमें पूरी जानकारी हासिल कर ली है।

"डाक्टर रोगियोंको देखकर जब घर लौट आये, तो मैंने, खिलखिला कर खूब हँसते-हँसते कहा, 'क्यों डाक्टर साहब, मैंने सुना है कि आज आपका ब्याह होनेवाला है ?' मेरी हँसी देखकर डाक्टर सिर्फ झेंपे ही नहीं, बल्कि उनका चेहरा फक पड़ गया। मैंने पूछा, 'बाजे-आजे कुछ नहीं बुलाये ?' सुनकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली, और बोले, 'ब्याह क्या इतने आनन्दकी चीज है ?' हँसते-हँसते मैं लोट-पोट हो गई। ऐसी बात तो पहले कभी नहीं सुनी थी। मैंने कहा, 'सो नहीं होगा, बाजे होने चाहिए, रोशनी होनी चाहिए, पूरा-पूरा ठाट-बाट होना चाहिए।' उसके बाद भइयाको मैंने ऐसा परेशान कर डाला कि भइया उसी वक्त धूमधूमसे बारात निकालनेकी तैयारीमें लग गये।

"मैं बार-बार एक ही बात छेड़ने लगी कि बहूके घर आनेपर क्या होगा, मैं क्या करूँगी ? डाक्टरसे मैं पूछ बैठी, 'अच्छा, डाक्टर साहब, तब भी क्या आप इसी तरह रोगियोंकी नाड़ी मसकते फिरेंगे ?' हिःहिः हिःहिः ! यद्यपि मनुष्यका, और खासकर पुरुषका मन दिखाई नहीं देता, फिर भी मैं

सौगन्द खाकर कह सकती हूं कि मेरी बात डाक्टरकी छातीमें कांटेकी तरह चुभकर रह गई।

"बहुत रात बीते लग्न था। शामके वक्त डाक्टर छतपर बैठे भइयाके साथ दो-एक गिलास शराब पी रहे थे। दोनों जने इस काममें कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाशमें चाँद उदय होने लगा। मैं हँसती-हुई ऊपर पहुँची, बोली, 'डाक्टर साहब, भूल गये क्या? चलनेका वक्त हो गया!'

"एक बात मैं कहना भूल गई। इस बीचमें छिपकर दवाखानेमें जाकर मैं थोड़ा-सा सफेद चूरा ले आई थी। छतपर पहुंचते ही दोनोंकी निगाह बचाकर मैंने उसे डाक्टरके गिलासमें मिला दिया। जिस चूरेके खानेसे आदमी मर जाता है, यह डाक्टरसे ही सीख लिया था।

"डाक्टरने एक सांसमें पूरा गिलास खाली करके मेरे मुंहकी तरफ मर्मान्तिक दृष्टि डालकर भीजे-हुए गद्गद कण्ठसे कहा, 'अच्छा तो अब चलता हूं!'

"शहनाई बजने लगी। नीचे उतरकर मैंने एक बनारसी साड़ी पहनी, और जितने भी गहने मेरे संदूकमें बन्द रखे थे, सब-के-सब निकालकर पहन लिये। माँगमें खूब अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया; और फिर अपने उसी मौलसिरीके पेड़के नीचे बिछौना बिछाकर लेट रही। बड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चाँदनी छिटक रही थी। सोती-हुई दुनियाकी थकावट दूर करती-हुई दक्षिणी हवा चल रही थी; मौलसिरी और बेलाकी सुगन्धसे सारा बगीचा महक रहा था।

"शहनाईकी तान क्रमशः जब दूर होती चली गई, चाँदनी जब अन्धकारका रूप धारण करने लगी, मेरा वह मौलसिरीका पेड़, बगीचा, ऊपरका आकाश, नीचेका मेरा वह आजन्मकालका घर-द्वार सब-कुछको लेकर दुनिया जब मेरे चारों तरफसे मायाकी तरह बिलाने लगी, तब मैं आँखें मीचकर हँसने लगी। इच्छा थी, जब लोग मुझे आकर देखें, तो मेरी वह हँसी रंगीन नशेकी तरह मेरे ओठोंपर ज्यों-की-त्यों लगी रहे। इच्छा थी, अपनी उस हँसीको यहाँसे मैं अपने साथ ही लेती जाऊँ; और वहाँ जब मैं अपने अभिसारकी सुहाग-कुटीरमें धीरे-धीरे प्रवेश करूँ तब तक वह ज्यों-की-त्यों बनी रहे।

"पर, कहाँ गई मेरी वह सुहाग-कुटीर ! कहाँ गया मेरा वह अभिसारका रंगीन मनोहर वेश ! अपने भीतरसे एक खटखटकी आवाज सुनकर मैं जाग गई। देखा तो, मुझे लेकर तीन लड़के अस्थि-विद्या सीख रहे हैं ! छातीके भीतर जहाँ सुख-दुख धुक-धुक करता रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन जहाँ यौवनकी कलियाँ खिला करती थीं, वहाँ, वहाँ बेंत दिखा-दिखाकर किस हड्डीका क्या नाम है, यह सीखा जा रहा है !

"सुनो, मैंने जो अपने सम्पूर्ण हृदय-मनको निचोड़कर अपने उन ओठों पर अन्तिम हँसी खिलाई थी, उसका कोई चिह्न तुम्हें दिखाई दिया था क्या ?"

"कहानी कैसी लगी ?"

मैंने कहा, "बड़े मजेकी।"

इतनेमें कौआ बोल उठा।

मैंने पूछा, "अभी हो क्या ?"

कोई जवाब नहीं मिला।

घरमें प्रभातका प्रकाश चमक उठा।

बंगला-रचना : फाल्गुन १९४८

हिन्दी-अनुवाद : असाढ़ २००४

स्वर्णमृग

आदिनाथ और बैजनाथ चक्रवर्ती दोनोंकी शिरकतमें जमीदारी है। इन दोनोंमें बैजनाथकी हालत कुछ खराब है। बैजनाथके पिता महेशचन्द्रमें सम्पत्तिकी रक्षा करने या उसे बढ़ानेकी बुद्धि जरा भी नहीं थी। वे अपने बड़े भाई शिवनाथपर ही पूरा भरोसा रखते थे। शिवनाथने छोटे भाई महेशचन्द्रको स्नेहके खूब दम-झाँसे दिये, और उसके बदलेमें उनकी तमाम जायदाद हड़प ली। महेशचन्द्रके पास सिर्फ थोड़ेसे प्रॉमेसरी नोट बच रहे। बैजनाथको अपने जीवन-समुद्रमें अब केवल उन्हीं थोड़ेसे सरकारी कागजोंकी नावका सहारा है।

शिवनाथने बड़ी खोजके साथ एक बड़े-आदमीकी इकलौती लड़कीके साथ अपने पुत्र आदिनाथका ब्याह कर दिया; और इस तरह वे सम्पत्ति-वृद्धिका एक रास्ता छोड़ गये। और, महेशचन्द्रने सात-सात लड़कियोंके बोझसे दबे-हुए एक गरीब ब्राह्मणपर दया करके दहेजमें एक भी पैसा न लेकर उसकी बड़ी लड़कीके साथ अपने पुत्रका ब्याह कर दिया। समधीकी सातों लड़कियोंको वे इसलिए अपने घर न ला सके कि उनके केवल एक ही लड़का था; और उस ब्राह्मणने भी कोई विशेष आग्रह नहीं किया। किन्तु फिर भी, सुनते हैं कि बाकी छै लड़कियोंके ब्याहके लिए समधीको उन्होंने अपने बूतेसे ज्यादा रुपये-पैसेसे मदद दी थी।

पिताकी मृत्युके बाद बैजनाथ अपने प्रॉमेसरी नोटोंको लेकर बिलकुल निश्चिन्त और सन्तोषके साथ जिन्दगी बिताने लगे। काम-धन्धेकी बात उनके मनमें आती ही न थी। काम उनका बस इतना ही था कि पेड़की डाली काटकर बैठे-बैठे उसकी छड़ी बनाया करते। दुनिया-भरके बच्चे और नौजवान उनके पास आते और छड़ीके लिए उम्मीदवार रहते, और वे उन्हें छड़ी बना-बनाकर देते। इसके सिवा उदारताकी उत्तेजनामें मछली पकड़नेकी छड़ी और पतंग उड़ानेकी चरखी वगैरह बनानेमें ही उनका काफी समय चला

जाता। ऐसा कोई काम हाथमें आ जाय कि जिसमें बड़ी सावधानीसे बहुत दिनों तक छीलने-घिसनेकी जरूरत हो और सांसारिक उपयोगिताको देखते हुए उसमें उतना वक्त बरबाद करना फजूल मालूम हो, तो उनके उत्साहकी हद न रहती।

अकसर देखा जाता है कि मुहल्लेमें जब दलबन्दी और षड्यन्त्र या साजिशके पीछे बड़े-बड़े पवित्र चण्डी-मण्डप और चौबारे धुआँधार हो उठते, तब बैजनाथ एक कलम-तराश चाकू और एक डाली हाथमें लिये, सवेरेसे दोपहर तक और खाने-पीनेके बाद शाम तक अपने चबूतरेपर अकेले अपनी धुनमें मस्त बैठे रहते।

षष्टीदेवीके कृपासे बैजनाथके दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई। किन्तु गृहिणी मोक्षदासुन्दरीका असन्तोष दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। उन्हें अफसोस है कि आदिनाथके घर जैसा समारोह है, बैजनाथके घर वैसा क्यों नहीं। उस घरकी विन्ध्यवासिनीके जैसे और जितने गहने हैं, बनारसी और ढाकेकी जितनी साड़ियाँ हैं, उनके यहाँ बातचीतका जैसा ढंग और रहन-सहनका जैसा ठाट है, वैसा मोक्षदाके घर नहीं, इससे बढ़कर अन्यायकी बात और क्या हो सकती है? और मजा यह कि एक ही खानदान है। कपटसे भाईकी जायदाद हड़पकर ही तो इतनी तरक्की की है उनलोगोंने! ज्यों-ज्यों ये बातें सुनती जातीं, त्यों-त्यों मोक्षदाके हृदयमें अपने ससुरके इकलौते बेटेपर अश्रद्धा और अवज्ञा बढ़ती ही जाती। अपने घरमें उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। सभी बातोंमें उन्हें अड़चन और मानहानि दिखाई देती। सोनेकी खटिया है सो भी ऐसी कि मुर्दा ले जानेकी खाटसे भी बदतर। जिसकी सात पीढ़ीमें अपना कहनेको कोई नहीं हो, ऐसा एक अनाथ चमगादड़का बच्चा भी इस घरकी टूटी-फूटी पुरानी दीवारसे नहीं चिपटा रह सकता, और घरकी सजावट देखकर तो महात्मा परमहंसकी आँखोंमें भी पानी आ जायगा। इन सब अत्युक्तियोंका प्रतिवाद करना मरदों-जैसी कायर जातिके लिए तो सम्भव ही नहीं, इसलिए बैजनाथ बाहरके चबूतरेपर दूनी लगनके साथ छड़ी छीलनेमें लग जाते।

किन्तु मौनव्रत विपत्तिकी एकमात्र अमोघ औषधि नहीं है। किसी-किसी दिन पतिके शिल्प-कार्यमें विघ्न डालकर मोक्षदा उन्हें अन्तःपुरमें बुलवा ही लेतीं ; और अत्यन्त गम्भीरतासे दूसरी ओर ताकती-हुई कहतीं, "ग्वालेसे कह दो, दूध बन्द कर दे।"

बैजनाथ सन्नाटेमें आ जाते, और नम्रतासे पूछते, "दूध बन्द करनेसे कैसे काम चलेगा ? लड़के पीयेंगे क्या ?"

गृहिणी उत्तर देतीं, "माड़ !"

किसी-किसी दिन इसके विपरीत भाव भी दिखाई देता, मोक्षदा पतिको बुलाकर कहतीं, "मैं कुछ नहीं जानती,– जो करना हो, तुम्हीं करो।"

बैजनाथ उदास होकर पूछते, "क्या करना है, बताओ भी ?"

"कमसे कम इस महीनेका सामान तो ले आओ।"– कहकर गृहिणी ऐसी एक फेहरिस्त बनाकर देतीं कि जिससे राजसूय-यज्ञ भी समारोहके साथ सम्पन्न हो जाता।

बैजनाथ हिम्मत बाँधकर पूछते भी कि 'इतनेका क्या होगा', तो उत्तर सुनते, 'तो लड़कोंको भूखों मरने दो, और मैं भी मर जाऊँ, तब तुम अकेले रह जाना और खूब सस्तेमें काम चलाना।'

इस तरह धीरे-धीरे यह बात बैजनाथकी समझमें आ गई कि अब छड़ी छीलनेसे काम नहीं चलेगा। पैसा पैदा करनेका कोई रास्ता ढूँढ़ निकालना या रोजगार करना बैजनाथके लिए दुराशा है ; लिहाजा, उन्होंने सोचा कि कुबेरके भण्डारमें घुसनेका कोई सुगम रास्ता ढूँढ़ निकालना ही इस सङ्कटसे बचनेका एकमात्र उपाय है।

एक दिन रातको बिछौनेपर पड़े-पड़े वे अत्यन्त दीनतासे प्रार्थना करने लगे, 'हे माता जगदम्बे, स्वप्नमें यदि किसी दुःसाध्य रोगकी पेटेण्ट दवा बता दो, तो अखबारोंमें विज्ञापन लिखनेका भार मैं ले लूँ।'

उस रातको उन्होंने स्वप्नमें देखा कि उनकी स्त्री उनपर नाराज होकर चटसे विधवा-विवाह करनेका प्रण कर बैठी हैं। 'अर्थाभाव होते-हुए काफी गहने कहाँ मिलेंगे ?'– कहकर बैजनाथ उनकी प्रतिज्ञाका विरोध कर रहे हैं।

'विधवाको गहनेकी जरूरत नहीं'– कहकर पत्नी उसका खण्डन कर रही हैं। इसका मुँहतोड़ जवाब कुछ है जरूर, पर, उस समय उनके दिमागमें नहीं आया। इतनेमें नींद उचट गई, देखा तो सवेरा हो गया है, और तब झटसे उनके दिमागमें आया कि क्यों उनकी स्त्रीका विधवा-विवाह नहीं हो सकता, और इसके लिए वे कुछ दुःखित भी हुए।

दूसरे दिन सवेरे नहा-निबटकर बैजनाथ अकेले बैठे पतंगमें डोरा डाल रहे थे। इतनेमें एक संन्यासीने आकर दरवाजेपर जयध्वनि की। संन्यासीको देखते ही बिजलीकी तरह बैजनाथको भावी ऐश्वर्यकी उज्ज्वल मूर्ति दिखाई दी। संन्यासीका बड़ा-भारी आदर-सत्कार हुआ और अच्छे-अच्छे भोजनोंसे उसे तृप्त किया गया। बहुत साध्य-साधनाके बाद मालूम कर सके कि संन्यासी सोना बना सकता है, और उस विद्याको दान करनेमें उसे कोई आपत्ति भी नहीं है।

गृहिणी भी मारे खुशीके नाच उठीं। यकृतके विकारसे जैसे सब पीला ही पीला दिखाई देता है वैसे ही उन्हें तमाम दुनियामें सोना ही सोना दीखने लगा। कल्पना-शिल्पी द्वारा सोनेका पलंग, घरका असवाब और दीवारों तकको सोनेसे मढ़कर मन-ही-मन उन्होंने विन्ध्यवासिनीको निमन्त्रण भी दे डाला।

संन्यासी रोज दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहनभोग उड़ाने लगा; और बैजनाथके सरकारी कागजोंको दुह-दुहकर उनसे मनमाना रौप्य-रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखीके भूखे लड़कोंका झुण्ड आता और बैजनाथके दरवाजे पर धमाधम घूँसा जमाकर लौट जाता। घरमें लड़के-बाले वक्तपर खाना नहीं पाते। कोई गिरकर माथेपर गुमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर डालता, मा-बापका उधर कुछ ध्यान ही नहीं। चुपचाप अग्नि-कुण्डके सामने बैठे वे कड़ाहेकी ओर इकटकी लगाये रहते, न आँखोंके पलक गिरते और न मुँहसे बात निकलती। ऐसा लगने लगा जैसे तृषित एकाग्र नेत्रोंपर लगातार आगकी लौका प्रतिविम्ब पड़ते रहनेसे उनकी आँखोंकी मणियोंमें मानो स्पर्शमणिके गुण आ गये हों।

दो-दो प्रॉमेसरी नोटोंकी उस अग्नि-कुण्डमें आहूति हो चुकनेके बाद एक दिन संन्यासीसे आश्वासन मिला, "कल सोनेमें रंग आयेगा।"

उस दिन, रातको दोनोंमेंसे किसीको भी नींद नहीं आई। स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी बनानेके काममें लग गये। इस विषयमें कभी-कभी दोनोंमें मतभेद और बहस होने लगती, किन्तु, आनन्दके आवेगमें उसकी मीमांसा होनेमें देर न लगती। परस्पर एक दूसरेका खयाल रखकर अपने-अपने मतमें कुछ-कुछ त्याग करनेमें किसीने कंजूसी नहीं की। सचमुच उस रातको दाम्पत्य-एकीकरण इतना अधिक घना हो गया था।

दूसरे दिन संन्यासीका पता ही नहीं! चारों तरफसे सोनेका रंग जाता रहा, सूर्यकी किरणें तक अन्धकारमय दीखने लगीं। उसके बाद फिर तो घरकी खटिया, असबाब और दीवारें चौगुनी दरिद्रता और जीर्णता प्रगट करने लगीं।

अबसे घरके काम-काजके बारेमें बैजनाथ कोई बात कहते तो गृहिणी बड़े तीव्र-मधुर स्वरमें कहतीं, "बस, रहने दो, अक्लमन्दी काफी दिखा चुके हो, अब जरा कुछ दिन चुप बने रहो।"

बैजनाथ बेचारे एकदम मध्यम पड़ जाते।

मोक्षदाने अब ऐसा श्रेष्ठताका भाव धारण कर लिया है कि मानो इस स्वर्ण-मरीचिकामें उन्हें एक घड़ीके लिए भी शान्ति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ स्त्रीको खुश करनेके लिए बहुतसे उपाय सोचने लगे। एक दिन वे एक चौखूँटे कागजके बकसमें गुप्त-उपहार लेकर स्त्रीके पास पहुँचे। और खूब हँसकर बड़ी चतुराईके साथ सिर हिलाते-हुए बोले, "क्या लाया हूँ, बताओ तो?"

स्त्रीने कुतूहलको छिपाकर उदासीन भावसे कहा, "कैसे बताऊँ, मैं कोई जादू तो जानती नहीं!"

बैजनाथने अनावश्यक समय नष्ट न करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गाँठ खोली, उसके बाद फूँक मारकर कागजकी धूल उड़ाई, फिर बड़ी सावधानीसे एक-एक तह खोलकर ऊपरका कागज हटाकर आर्ट-स्टूडिओकी बनी-हुई दश-

महाविद्याकी पँचरंगी तसवीर निकाली और उजालेकी तरफ घुमाकर गृहणीके सामने रख दी।

गृहणीको उसी समय विन्ध्यवासिनीके खास कमरेमें लगे-हुए विलायती तैलचित्रकी याद उठ आई, वे बहुत ही अवज्ञाके साथ बोलीं, "अहा, बलिहारी है! इसे तुम अपनी बैठकमें ही लगा लेना, और बैठे-बैठे इसकी ओर देखा करना। मुझे इसकी जरूरत नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गये, और समझ गये कि विधाताने उन्हें और-और शक्तियोंके साथ स्त्रीको खुश रखनेकी दुर्लभ शक्तिसे भी वञ्चित रखा है।

इधर, देश-भरमें जितने ज्योतिषी मिले, मौक्षदाने सबको हाथ दिखाया, और जनमपत्री भी दिखाई। सभीने यही कहा कि वे सधवा-अवस्थामें मरेंगी। परन्तु उस परमानन्दमय परिणामके लिए वे बहुत व्यग्र न थीं, और इसलिए इससे भी उनका कुतूहल न मिटा।

अबकी बार सुना कि 'उनका सन्तान-भाग्य अच्छा है, लड़के-लड़कियोंसे जल्द ही घर भर जायगा।' सुनकर कोई खास खुशी नहीं जाहिर की।

अन्तमें एक ज्योतिषीने कहा, "एक सालके अन्दर अगर बैजनाथको दैव-धन न मिल जाय, तो हम अपनी पोथी-पत्रा सब जला डालेंगे।"

ज्योतिषीकी इस दृढ़ प्रतिज्ञाको सुनकर मोक्षदाके मनमें अब रत्ती-भर भी अविश्वास न रह गया।

ज्योतिषी तो काफी भेंट-पूजा ले-लाकर विदा हो गये ; पर, बैजनाथका जीवन भार-स्वरूप हो गया। धन-उपार्जनके कुछ साधारण प्रचलित मार्ग हैं भी, जैसे खेती, नौकरी, व्यापार, चोरी और धोखेबाजी वगैरह-वगैरह, किन्तु दैव-धन उपार्जनका वैसा कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है ; और इसलिए, मोक्षदा बैजनाथको ज्यों-ज्यों उत्साह देतीं और फटकार बतातीं त्यों-त्यों उन्हें किसी तरफ कोई रास्ता नहीं सुझाई देता। कहाँ खोदना शुरू करें, किस तालाबमें खोज करानेके लिए पनडुब्बोंको तैनात करें, मकानकी किस दीवारको तुड़वायें, वे कुछ निर्णय नहीं कर पाये।

मोक्षदाने बहुत ही नाराज होकर पतिसे कहा, "मरदोंके माथेमें मगजके

बदले गोबर भरा रहता है, यह मैं पहले नहीं जानती थी।" फिर बोलीं, "जरा कहीं हिलो तो सही। ऊपरको मुँह बाये बैठे रहनेसे क्या आसमानसे रुपये बरसेंगे?"

बात तो ठीक है, और बैजनाथ चाहते भी यही हैं, पर हिलें तो किस तरफ और कहाँ? कोई बताता भी तो नहीं, इसलिए चबूतरेपर बैठकर वे फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मासमें दुर्गा-पूजा नजदीक आ गई। चतुर्थीसे नाव आ-आकर घाटपर लगने लगीं। प्रवासी लोग अपने देशको लौटने लगे। टोकनियोंमें कुम्हड़ा, घुइयाँ, सूखे नारियल और टीनके बकसोंमें लड़कोंके लिए जूते, छतरी, कपड़े, और प्रेयसियोंके लिए एसेन्स, साबुन, सुगन्धित नारियल-तैल और नई-नई कहानियोंकी किताबें आ रही हैं।

शरत्‌की सूर्य-किरणें, उत्साहके हास्यकी तरह, मेघमुक्त आकाशमें व्याप्त हो रही हैं, अध-पके धानके खेत थर-थर काँप रहे हैं, पेड़ोंकी वर्षासे धुली-हुई सतेज हरी-ही पत्तियाँ नये शीतकी हवासे सिसकारियाँ भर रही हैं, और चायना-टसरका कोट पहने, कँधेपर इँठी-हुई चादर लटकाये और सिरपर छतरी ताने परदेशसे लौटते-हुए पथिकगण खेतके रास्तेसे घरकी तरफ जा रहे हैं।

बैजनाथ बैठे-बठे यही देखा करते, और उनके हृदयसे लम्बी-लम्बी साँसें निकलती रहतीं। वे अपने आनन्दशून्य घरके साथ बङ्गालके हजारों घरोंके मिलनोत्सवकी तुलना करते और मन-ही-मन कहते, 'विधाताने मुझे ही क्यों ऐसा अकर्मण्य पैदा किया?'

लड़के तड़के ही से उठकर प्रतिमा-निर्माण देखनेके लिए आदिनाथके घर आँगनमें जाकर बैठ गये। खानेका समय होनेपर दासी उन्हें जबरदस्ती वहाँसे पकड़ लाई। बैजनाथ उस समय चबूतरेपर बैठे-हुए आजके इस देशव्यापी उत्सवमें अपने जीवनकी निष्फलताका स्मरण कर-करके दुःखित हो रहे थे। दासीके हाथसे दोनों लड़कोंको छुड़ाकर और प्रेमसे उन्हें अपनी गोदके पास खींचकर उन्होंने बड़े लड़केसे पूछा, "क्यों रे, अबकी पूजामें तू क्या लेगा, बोल?"

अविनाशने उसी समय जवाब दिया, "एक नाव देना, बापूजी !"

छोटे लड़केने भी सोचा कि बड़े भइयासे किसी विषयमें कम रहना ठीक नहीं, वह बोला, "मुझे भी एक नाव देना, बापूजी !"

बापके लायक लड़के हैं। एक निकम्मा शिल्प-कार्य मिल गया कि बाप धन्य हो गये। बापने कहा, "अच्छी बात है।"

इधर यथासमय पूजाकी छुट्टीमें काशीसे मोक्षदाके एक चाचा घर लौटे। वे वकालत करते हैं। मोक्षदाने कुछ दिनों तक उनके घर खूब जाना-आना जारी रखा।"

आखिर एक दिन वे पतिसे आकर कहने लगीं, "सुनते हो, तुम्हें काशी जाना पड़ेगा।"

बैजनाथको अचानक ऐसा लगा कि शायद उनका अब मृत्यु-समय आ पहुँचा है। जरूर किसी ज्योतिषीने जन्मपत्री देखकर कहा होगा, इसीसे सहधर्मिणी उनकी सद्गतिके लिए उद्योग कर रही हैं।

पीछे मालूम हुआ कि काशीमें एक मकान है, वहाँ गुप्त-धन मिलेगा, और उस मकानको खरीदकर उसमेंसे धन ले आना होगा।

बैजनाथने कहा, "यह तो बड़ी आफत है। मैं काशी नहीं जा सकूँगा।"

बैजनाथ आज तक घर छोड़कर कभी कहीं बाहर नहीं गये। प्राचीन शास्त्रकारोंका कहना है कि गृहस्थको किस तरह घरसे निकाला जाता है, इस विषयमें स्त्रियोंको 'अशिक्षित-पटुत्व' होता है। मोक्षदा अपने मुँहकी बातोंसे मानो घरमें लालमिर्चका धुआँ भर देती थीं, पर उससे अभागा बैजनाथ सिर्फ आँसू ही बहाकर रह जाता, काशी जानेका नाम तक न लेता।

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गये। बैजनाथने बैठे-बैठे कुछ लकड़ियोंको काट-छाँटकर और जोड़-जाड़कर दो खेलनेकी नावें बनाईं, उनमें मस्तूल बिठाये और कपड़ा काटकर पाल लगा दिये, लाल कपड़ेकी ध्वजा लगाई और पतवार वगैरह जहाँकी तहाँ बिठा दी। एक गुड्डेको मल्लाह बनाया और यात्री भी बिठा दिये। गरज यह है कि उसमें उन्होंने काफी निपुणताका परिचय दिया। उन नावोंको देखकर अपने मनको वशमें रख सकें, ऐसे

संयतचित्त बालक बिरले ही मिलेंगे। इसलिए बैजनाथने सप्तमीके पहले छठकी रातको जब दोनों नावें दोनों लड़कोंके हाथमें दीं तो वे मारे खुशीके नाचने लगे। एक खाली नाव ही काफी थी, उसपर लगे हुए थे पाल, मस्तूल, पतवार और मल्लाह वगैरह सब-कुछ! यही उनके लिए बड़े-भारी ताज्जुबकी बात थी।

लड़कोंकी खुशीकी धूमने माका ध्यान आकर्षित किया, और उन्होंने आ कर अपनी आँखोंसे गरीब बापका दिया-हुआ 'पूजाका उपहार' पुत्रोंके हाथमें देखा। देखकर मारे गुस्सेके उन्हें रुलाई आ गई। अपनी तकदीरपर हाथ दे मारा; और लड़कोंके हाथसे खिलौने छीनकर जंगलेसे बाहर फेंक दिये। 'सोनेका हार तो दर-किनार रहा, साटनका कोट और जरीदार टोपी भी मिट गई! कैसा मनहूस आदमी है यह, दो खिलौने देकर खास अपने ही लड़कोंको धोखा देने आया है, और उसमें भी कंजूससे गाँठसे दो पैसे तक खर्च नहीं किये गये,— अपने हाथसे बनाई हैं!'

छोटा लड़का जोरसे रो उठा। "मूरख कहींका" – कहते-हुए मोक्षदाने उसके गालपर कसकर एक तमाचा जड़ दिया।

बड़ा लड़का बापके मुँहकी ओर देखकर अपना दुःख भूल गया; और ऊपरी खुशी दिखाता-हुआ बोला, "बापूजी, मैं कल खूब सवेरे जाकर उठा लाऊँगा।"

बैजनाथ उसके दूसरे ही दिन काशी जानेको राजी हो गये। पर, रुपये कहाँ हैं? उनकी स्त्रीने जेवर बेचकर रुपये इकट्ठे किये। बैजनाथकी दादीके जमानेकी चीजें थीं, ऐसा पक्का सोना और इतनी भारी चीजें आजकल तो देखनेको भी न मिलेंगी।

जाते समय, बैजनाथको ऐसा लगा कि जैसे वे मरने जा रहे हों! लड़कोंको गोदमें लेकर पुचकारा, खूब प्यार किया, और फिर आँखोंमें आँसू भरकर घरसे निकल पड़े। तब मोक्षदा भी रोने लगीं।

काशीका मकान-मालिक बैजनाथके ककिया-ससुरका मुवक्किल था। और शायद इसीलिए मकान खूब ऊँचे दामोंमें बिका। बैजनाथ उस मकानमें अकेले ही रहने लगे। मकान बिलकुल गंगाके किनारेपर है। गंगाकी धारा उसकी नींवको धोती-हुई बहती है।

रातको बैजनाथके रोंगटें खड़े हो उठे। सूने मकानमें सिरहानेके पास दीआ जलाकर चद्दर ओढ़कर वे सो रहे, पर, नींद नहीं आई। आधी रातको जब तमाम शोर-गुल थम गया, तब कहींसे एक 'झनझन' की आवाज सुन कर बैजनाथ चौंक पड़े। आवाज बहुत धीमी, पर, सुनाई साफ देती है। मानो पातालमें बलि राजाके कोषाध्यक्ष अपने भण्डारमें बैठे-हुए रुपये गिन रहे हों।

बैजनाथके मनमें भय, कुतूहल और साथ ही अजेय आशाका भी सञ्चार हुआ, काँपते-हुए हाथसे दीआ उठाकर वे सब कोठरियोंमें घूम आये। इस कोठरीमें घुसते तो मालूम होता कि आवाज उस कोठरीसे आ रही है, और उस कोठरीमें जाते तो मालूम होता कि इस कोठरीसे आ रही है। सारी रात इसी तरह इस कोठरीसे उस कोठरी घूमते रहे। दिनमें, रातका वह पाताल-भेदी शब्द अन्यान्य शब्दोंके साथ मिल गया, फिर वह पहचाननेमें नहीं आया।

रातके जब दो-तीन पहर बीत चुके और दुनिया सो चुकी, तो फिर वह शब्द जाग उठा। बैजनाथका चित्त बहुत ही व्याकुल हो उठा। शब्दका लक्ष्य ठीक करके किधर जाना चाहिए, उनसे कुछ स्थिर करते न बना। मानो मरुभूमिमें पानीका कल्लोल सुनाई दे रहा है, किन्तु किधरसे आ रहा है, कुछ निर्णय करते नहीं बनता। डर यह है कि कहीं गलत रास्ता पकड़ लिया और गुप्त झरना बिलकुल अधिकारके बाहर चला गया तो? प्यासा पथिक जैसे चुपचाप खड़ा-खड़ा पानीके झरनेकी आवाजकी तरफ बड़े गौरसे कान लगाये रहता है और प्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है ठीक वही दशा बैजनाथकी हुई।

बहुत दिन अनिश्चित अवस्थामें ही कट गये। सिर्फ अनिद्रा और वृथा आश्वाससे उनके सन्तोषपूर्ण मुँहपर व्यग्रताका तीव्र भाव ही रेखान्वित हो

उठा। उनके भीतर धँसे-हुए चकित नेत्रोंमें दोपहरकी मरु-बालुकाकी तरह एक ज्वाला दिखाई देने लगी।

अन्तमें, एक दिन दोपहरको सब दरवाजे बन्द करके उन्होंने घर-भरमें साबर ठकठकाना शुरू कर दिया। बगलकी एक छोटी-सी कोठरीकी जमीन पोली-सी मालूम दी।

आधी रातके करीब वैजनाथ अकेले बैठकर जमीन खोदने लगे। जब रात खतम होने आई और पौ फटने लगी, तब कहीं गड्ढा पूरा खुद पाया।

उन्होंने देखा कि नीचे एक घर-सा बना-हुआ है, पर, रातके अँधेरेमें उसमें बिना बिचारे पैर डालनेकी उनकी हिम्मत न पड़ी। गड्ढेके ऊपर बिछौना बिछाकर पड़ रहे। पर, आवाज इतनी साफ-साफ सुनाई देने लगी कि डरके मारे उनसे वहाँ ठहरना मुश्किल हो गया। वहाँसे वे उठ आये, लेकिन, घरको यों ही सूना छोड़कर दूर जानेकी भी उनकी प्रवृत्ति न हुई। लोभ और भय दोनों मिल कर उन्हें दोनों ओरसे हाथ पकड़कर खींचने लगे। रात बीत गई।

आज तो दिनमें भी आवाज सुनाई दे रही है! नौकर तकको उन्होंने घरके भीतर नहीं आने दिया, और खाना-पीना भी सब बाहर ही किया। खा-पीकर घरमें घुसे और भीतरसे ताला बन्द कर लिया।

दुर्गा नामका जप करते-हुए उन्होंने गड्ढेके मुँहपरसे बिस्तर हटाकर अलग कर दिया। पानीकी छपछप और धातुकी टनठन आवाज बिलकुल साफ-साफ सुनाई देने लगी।

डरते-डरते गड्ढेके पास आहिस्तेसे मुँह ले जाकर देखा, बहुत नीचे एक कोठरी-सी है, उसमें पानीका स्रोत चल रहा है। अँधेरेमें और कुछ विशेष दिखाई नहीं दिया। फिर एक बड़ी लकड़ी डालकर आजमाया, देखा कि पानी घुटनोंसे ज्यादा नहीं है। एक दिआसलाई और बत्ती लेकर उस कोठरीके अन्दर वे आसानीसे कूद पड़े। क्षण-भरमें कहीं सारी आशा ही न बुझ जाय, इसलिए बत्ती जलानेमें हाथ काँपने लगे। बहुत-सी दिआसलाई नष्ट होनेके बाद बत्ती जली। देखा कि लोहेकी मोटी जंजीरसे एक ताँबेका बड़ा-

भाड़ी घड़ा बँधा-हुआ है, एक-एक बार स्रोतका पानी जोरसे आता है और जंजीर घड़ेपर पड़ती है और आवाज करती है।

बैजनाथ पानीपर छपछप शब्द करते-हुए झट-पट घड़ेके पास जा पहुँचे। देखा तो, घड़ा खाली है!

फिर भी वे अपनी आँखोंपर विश्वास न ला सके, दोनों हाथोंसे घड़ा उठाकर उसे खूब झकझोर डाला। भीतर कुछ भी न निकला। औंधा करके हिलाया, कुछ भी न गिरा। देखा तो, उसका गला उखड़ा-हुआ है, मानो किसी समय इस घड़ेका मुँह बिलकुल बन्द था, किसीने तोड़ा है।

तब बैजनाथ पागलकी तरह पानीके अन्दर दोनों हाथोंसे टटोल-टटोल कर देखने लगे। कीचड़में कोई चीज पड़ी-सी मालूम दी, उठाकर देखा तो मुरदेकी खोपड़ी निकली। उसे भी कानोंके पास ले जाकर झकझोरा, भीतर कुछ न निकला। खोपड़ी उठाकर फेंक दी। बहुत देर तक ढूंढ़ते रहे, पर नर-कङ्कालकी हड्डियोंके सिवा और कुछ भी हाथ न आया।

देखा, गंगाकी तरफ दीवारमें एक जगह सूराख-सा हो रहा है, उसमेंसे पानी आ रहा है। सम्भव है कि उनसे पहलेके जिस आदमीकी जन्मपत्रीमें दैव-धनकी प्राप्तिकी बात लिखी थी, वह शायद इसी छिद्रसे घुसा होगा।

आखिर जब बिलकुल हताश हो गये, तो 'अरी, मेरी मा' कहकर एक गहरी साँस ली, उसके जवाबमें मानो अतीतकालके और भी बहुतसे हताश व्यक्तियोंकी साँसें भीषण गम्भीरतासे प्रतिध्वनिके रूपमें पातालसे गूँज उठीं।

तमाम देहमें पानी और कीचड़ लपेटे-हुए बैजनाथ ऊपर आये। जन-पूर्ण कोलाहलमय पृथ्वी उन्हें आदिसे अन्त तक झूठी और उस जंजीरसे बँधे हुए घड़ेकी तरह सूनी मालूम देने लगी।

फिर सब चीज-वस्त बाँधनी पड़ेगी, टिकट खरीदना पड़ेगा, गाड़ीपर अपने अकर्मण्य जीवन-भारको फिर पहलेकी तरह ढोना पड़ेगा। तबीयत हुई कि नदीके कमजोर बालूके तटकी तरह चटसे वे टूटकर पानीमें गिर जायें। पर, ऐसा न कर सके। फिर वही चीज-वस्त बाँधनी पड़ी, टिकट खरीदना पड़ा और गाड़ीपर भी चढ़ना पड़ा।

एक दिन शामके वक्त वे घरके दरवाजेपर जा पहुँचे। आश्विन मासमें शरद-ऋतुके प्रातःकालमें दरवाजेके पास बैठकर बैजनाथने अनेक प्रवासियोंको घर लौटते देखा है और गहरी उसास लेकर मन-ही-मन वे विदेशसे देश लौटनेके इस सुखके लिए लालायित भी हुए हैं ; किन्तु तब वे आजकी इस सन्ध्याकी स्वप्नमें भी कल्पना न कर सकते थे।

घरमें जाकर वे आँगनके तख्तपर निर्बोधकी तरह बैठे रहे, भीतर नहीं गये। सबसे पहले महरीने उन्हें देखा; और देखते ही शोर मचा दिया। लड़के दौड़े आये। गृहिणीने उन्हें भीतर बुलवा भेजा।

बैजनाथका मानो एक नशा-सा उतर गया। फिर मानो वे उसी पुरानी घर-गृहस्थीमें सोते-सोते जाग उठे। मुँहपर मलिन हँसी लिये एक लड़केको गोदमें लेकर और एकका हाथ पकड़कर भीतर पहुँचे। दीआ जल चुका था। यद्यपि रात नहीं हुई थी, तो भी जाड़ेकी सन्ध्यामें रातकी तरह सन्नाटा छा गया था।

बैजनाथ पहले तो कुछ देर तक चुप रहे। फिर मृदु स्वरसे स्त्रीसे पूछने लगे, "कहो, कैसे रहीं ?"

स्त्रीने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा, "क्या हुआ ?"

बैजनाथने कुछ जवाब न देकर तकदीरपर हाथ दे मारा। मोक्षदाका मुँह अत्यन्त कठोर हो गया।

लड़के बेचारे किसी भारी अकल्याणकी छाया देखकर धीरेसे वहाँसे किनारा कर गये। महरीके पास जाकर बोले, "उस दिनवाली नाईकी कहानी सुनाओ न !" और बिस्तर पड़ रहे।

इधर रात होने लगी, पर दोनोंके मुँहसे एक भी बात न निकली। घरके अन्दर न-जाने कैसा एक सन्नाटा-सा छा गया ; और मोक्षदाके ओठ क्रमशः बज्रकी तरह कठोर होने लगे।

बहुत देर पीछे मोक्षदा बिना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कमरेमें चली गई, और भीतरसे हुड़का लगा लिया।

बैजनाथ चुपचाप खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार'की आवाज लगकर चला गया। थकी-हुई दुनिया सुखकी नींद सोती रही। किन्तु, अपने आत्मीय-स्वजनोंसे लेकर अनन्त आकाशके नक्षत्र तक किसीने भी इस लाञ्छित निद्रा-हीन पुरुषसे एक बात भी न पूछी।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्नसे जागकर, बैजनाथके बड़े लड़केने बिछौनेसे उठकर बरामदेमें आकर पुकारा, "बापूजी !"

तब उसके बापूजी वहाँ नहीं थे। बालकने और भी जरा जोरसे बन्द किवाड़के बाहरसे पुकारा, "बापूजी !" किन्तु कोई जवाब न मिला। फिर वह डरता-डरता बिछौनेपर जाकर सो गया।

पहलेकी रीतिके अनुसार महरीने हुक्का भरकर बैजनाथकी तलाश की, पर वे कहीं भी दिखाई न दिये। दिन चढ़नेपर पड़ोसी लोग घर लौटे-हुए पड़ोसीकी खबर-सुध लेने आये, पर, बैजनाथके साथ किसीकी भी मुलाकात न हुई।

बंगला-रचना : फागुन १९४९
हिन्दी-अनुवाद : जेठ २००४

सौगात

पूजाके दिन करीब हैं। भण्डार तरह-तरहकी चीजोंसे भरा पड़ा है। कितनी बनारसी साड़ियाँ हैं, कितने गहने हैं, दूध-दही और तरह-तरहकी मिठाइयाँ हैं।

मा सौगात भेजा चाहती है।

बड़ा लड़का परदेशमें सरकारी नौकरी करता है ; और मझला लड़का सौदागर है, घरमें नहीं रहता। और भी कई लड़के हैं, किन्तु वे आपसमें भाई-भाई लड़कर अलग मकानोंमें रहने लगे हैं। और भी कुटुम्बके लोग हैं जो देश-परदेशमें बिखरे-हुए हैं।

गोदका लड़का सदर-दरवाजेपर खड़ा सवेरेसे देख रहा है, सौगातोंका ताँता बँध गया है, दास-दासियाँ रंग-बिरंगे कपड़ोंसे ढककर भर-भर थाल सौगात लिये जा रहे हैं।

दिन खतम हो गया। सौगात सब जा चुकी। दिनके अन्तिम नैवेद्य की सोनेकी डाली लेकर सूर्यास्तकी अन्तिम आभा नक्षत्रलोकके मार्गमें विलीन हो गई।

बच्चेने घरके भीतर आकर मासे कहा, "मा, सबको तुमने सौगात दी, मुझे नहीं दी!"

माने हँसकर कहा, "सबको सब दे चुकी, अब तेरे लिए क्या बचा है सो देख!"

इतना कहकर माने बच्चेको बड़े प्यारसे पुचकारकर उसकी मिट्टी ले ली।

बच्चेने रोन-सी सूरत बनाकर कहा, "मुझे सौगात नहीं देगी?"

"जब तू दूर जायगा, तब तेरे लिए सौगात भेजूँगी।"

"और पास रहूँगा तो, तू अपने हाथकी चीज मुझे नहीं देगी?"

माने दोनों हाथ बढ़ाकर बच्चेको गोदमें उठा लिया; और बोली, "मेरे हाथकी चीज तो तू है, बेटा!"

बंगला-रचना : फागुन १९५९
हिन्दी-अनुवाद : जेठ २००५

बदलीका दिन

रोज ही दिन-भर काम रहता है और चारों तरफ भीड़-भभ्भड़। रोज ही ऐसा मालूम होता है मानो उस दिनके काममें, उस दिनकी बातचीतमें उस दिनकी सारी बातें उसी दिन बिलकुल खतम कर दी जाती हैं।

भीतर-ही-भीतर कौनसी बात रह गई, इतना भी समझनेका मौका नहीं मिलता।

आज सवेरे बादलोंके समूहसे आकाशकी छाती भर आई है। आज भी दिन-भरके लिए काम पड़ा है सामने ; और चारों तरफ लोगोंकी भीड़ है। परन्तु आज मालूम होता है, भीतर जो-कुछ है, बाहरसे उसे बिलकुल खतम नहीं किया जा सकता।

मनुष्यने समुद्र पार किये, पहाड़ लाँघ डाले, यहाँ तक कि पातालपुरीमें सेंध मारकर वह मणिक-मोती चुरा लाया ; पर, एकके हृदयकी बात दूसरेको चुकता दे डालना, यह उससे किसी भी तरह न हो सका।

आज सवेरे, बदलीके दिन, मेरी वह पिंजड़ेमें बन्द मनकी बात हृदयके अन्दर पंख फड़फड़ाकर मरी जा रही है। भीतरका आदमी कह रहा है, "मेरा वह चिरकालका और-एक आदमी कहाँ है, जो मेरे हृदयके श्रावण-मेघोंको कङ्गाल बनाकर उसकी सारी वर्षा छीन लेता है ?"

आज बदलीके दिनमें, सवेरेसे ही सुन रहा हूँ, भीतरकी वह मनकी बात बार-बार बन्द दरवाजेकी साँकल हिला रही है।

सोच रहा हूँ, 'क्या करूँ ? कौन है जिसकी बुलाहटसे काम-काजकी मेंड़ लाँघकर मेरी वाणी अभी तुरत स्वरका दीपक हाथमें लेकर विश्वके अभिसारके लिए निकल पड़े ? कौन है जिसकी आँखोंके एक इशारेसे मेरी बिखरी-हुई सारी व्यथाएँ एक क्षणमें एक आनन्दमें गुँथ जायें, एक उजालेमें जल उठें ? जो मुझे ठीक स्वरमें माँग सके, मैं अपनेको उसीको, सिर्फ उसीको दे सकता हूँ। मेरा वह सत्यानाशी भिखारी है किस चौराहेपर ?'

मेरे भीतरकी उस व्यथाने आज गेरुआ वसन पहन लिये हैं। रास्तेमें निकलना चाहती है वह, सब काम-काजोंके बाहरके मार्गमें, जो मार्ग एकमात्र सरल तारके एकतारेके समान न-जाने किस मनके आदमीके चलनेके साथ-साथ बज रहा है !

बंगला-रचना : आश्विन १९७६
हिन्दी-अनुवाद : श्रावण २००४

हिन्दू-मुसलमान

संसारमें दो धर्म-सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनका अन्य समस्त धर्म-मतोंके खिलाफ विरोध बहुत ही उग्र है ; वे हैं क्रिश्चियन और मुसलमान-धर्म। वे अपने धर्मका पालन करके ही सन्तुष्ट नहीं, बल्कि अन्य धर्मोंमें रुकावट डालनेको तैयार रहते हैं। इसीलिए उनसे मिलनेका, उनका धर्म अङ्गीकार करनेके सिवा और-कोई रास्ता ही नहीं। ईसाई-धर्मवालोंके बारेमें एक सहूलियतकी बात यह है कि वे आधुनिक युगके वाहन हैं, उनका मन मध्य-युगकी चहारदीवारीके अन्दर बन्द नहीं है। धर्ममत एकान्त-रूपसे उनके सम्पूर्ण जीवनको घेरकर पूरी बाधा नहीं पहुँचाता। 'यूरोपीय बौद्ध' या 'यूरोपीय मुसलमान' इन शब्दोंमें स्वतःविरुद्धता नहीं है। लेकिन, धर्मके नामपर जिस जाति या नेशनका नामकरण है, धर्ममतसे ही उसका मुख्य परिचय है। 'मुसलमान बौद्ध' या 'मुसलमान ईसाई' ये दोनों शब्द स्वतः ही असम्भव हैं। दूसरी तरफ, हिन्दू जाति भी एक हिसाबसे मुसलमानोंके ही समान है, यानी, वह धर्मकी चहारदीवारीसे पूरी तरह घिरी-हुई है। बाहरी फरक यह है कि अन्य धर्मोंके प्रति विरुद्धता उसके लिए सकर्मक नहीं है ; अ-हिन्दू सभी धर्मोंके साथ उसका अहिंसापूर्ण असहयोग है। हिन्दुओंका धर्म मुख्यतः जन्मगत और आचारमूलक होनेसे उसकी चहार-दीवारी और-भी मजबूत और कड़ी है। मुसलमान-धर्म अङ्गीकार करके मुसलमानोंके साथ समानरूपसे मिला जा सकता है, हिन्दुओंके यहाँ वह रास्ता भी बहुत सङ्कीर्ण है। आहार-व्यवहारमें मुसलमान अन्यान्य सम्प्रदायोंको विधि-निषेधों द्वारा अस्वीकार या वापस नहीं करता ; किन्तु हिन्दू वहाँ भी सावधान है। इसीसे खिलाफतके मौकेपर मुसलमान अपनी मसजिदोंमें और अन्यत्र हिन्दुओंको जितना पास खींच सके, मुसलमानोंको हिन्दू उतना नजदीक नहीं खींच पाये। आचार है आदमीके साथ आदमीके मिलनेका सेतु यानी पुल, और वहींपर हिन्दू कदम-कदमपर अपनी दीवार खड़ी करते रहे हैं।

मैं जब पहले-पहल अपनी जमींदारीके काममें लगा था तब मैंने देखा कि हमारी कचहरीमें मुसलमान किसानोंको जाजमका एक कोना उठाकर वहाँ बैठने दिया जाना है। आदमी आदमीके मिलनेके लिए अन्य आचार-अवलम्बियोंको अपवित्र समझनेके बराबर ऐसी खतरनाक रुकावट और कुछ नहीं हो सकती। भारतवर्षकी ऐसी ही तकदीर है कि यहाँ हिन्दू और मुसलमान जैसी दो जाति इकट्ठी हो गई हैं। धर्ममतमें हिन्दुओंकी बाधा प्रबल नहीं, आचारमें प्रबल है; और आचारमें मुसलमानोंकी वाधा प्रबल नहीं, धर्ममतमें प्रबल है। मतलब यह कि एक पक्षमें जिस तरफका दरवाजा खुला है, दूसरे पक्षमें उस तरफका दरवाजा बन्द है। आखिर ये कैसे मिलेंगे?

एक जमाना था जब भारतमें ग्रीक पारसीक शक आदि नाना जातियों का बेरोकटोक समागम और सम्मिलित हुआ था। लेकिन, याद रहे, यह 'हिन्दू'-युगके पहलेकी बात है। हिन्दू-युग है एक प्रतिक्रियाका युग। इस युगमें ब्राह्मण-धर्मकी नींव बड़ी कोशिशोंके साथ पक्की-पुख्ता करके डाली गई थी। दुर्लंघ्य आचारोंकी दीवारें खड़ी करके उसे दुष्प्रवेश कर दिया गया था। इस वातकी तब याद ही नहीं रही थी कि किसी प्राणवान चीजको बिलकुल कसके बाँधकर रखनेके मानी ही हैं उसे मार डालना। कुछ भी हो, मतलबकी बात यह है कि किसी खास जमानेमें बौद्ध-युगके बाद राजपूत आदि विदेशी जातियोंको अपने गुटमें मिलाकर, विशेष अध्यवसायके साथ अपनेको परकीय सम्बन्ध और प्रभावसे पूरी तरह बचाये रखनेके लिए ही आधुनिक हिन्दू-धर्मको भारतवासियोंने बड़ी-भारी चहारदीवारीके रूपमें गढ़के तैयार कर लिया था। असलमें इसकी प्रकृति ही है निषेध और प्रत्याख्यानकी, मनाही और अलग करनेकी। सब तरहके मिलनके खिलाफ ऐसी निपुणता और इतने कौशलके साथ रची-हुई सृष्टि दुनियामें और कहीं भी नहीं हुई।

यह बाधा हिन्दू और मुसलमानमें ही हो सो बात नहीं। आप और हम जैसे आदमी भी, जो आचारमें अपनी पूरी आजादी रखना चाहते हैं, अलग हैं, बाधाग्रस्त हैं। समस्या तो यही है। पर इसका समाधान कहाँ है?

यूरोप सत्यकी साधना और ज्ञानकी व्याप्तिके भीतरसे जिस तरह मध्ययुग मेंसे निकलकर आधुनिक युगमें आ पहुँचा है, हिन्दू और मुसलमानोंको भी उसी तरह चहारदीवारीके बाहर निकलना ही पड़ेगा। धर्मको कब्रकी बनावटपर बनाकर उसमें सारी जातिको भूतकालमें पूरी तरह बन्द करके रखनेसे उन्नतिके रास्तेपर चलना कदापि सम्भव नहीं; उसमें किसीके लिए किसीके साथ मिलनेका रास्ता ही नहीं।

हमारी मानस-प्रकृतिमें जो अवरोध या चहारदीवारी है, उसे बिना मिटाये हम किसी भी हालतमें सच्चे अर्थोंमें स्वाधीन नहीं हो सकते। शिक्षाके जरिये, साधनाके द्वारा हमें उसकी मूल जड़को बदलना ही पड़ेगा, मनोंमें परिवर्तन लाना ही होगा। 'डैनोंसे पिंजड़ा बड़ा है'–इस धारणा और संस्कारको बिलकुल बदल डालना होगा। उसके बाद हमारा कल्याण हो सकेगा। हिन्दू-मुसलमानका मिलन युग-परिवर्तनके लिए बैठा इन्तजार कर रहा है। किन्तु यह बात सुनकर डरनेकी कोई वजह नहीं। कारण और-और देशोंमें आदमीने अपनी शिक्षा और साधनासे युगको बदल डाला है। वे 'कोए'के युगमेंसे 'पंख पसारने'के युगमें निकल आये हैं। हम भी मानसिक चहारदीवारीको तोड़कर, दिमागी घेरेको तितर-बितर करके, बाहर निकल आयेंगे। और न आये, तो 'नान्यःपन्था विद्यते अयनाय'। इसके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं मिलनका।

बंगला-रचना : आसाढ़ १९७९

हिन्दी-अनुवाद : आषाढ़ २००४

प्रथम संस्करण : अगस्त १९४७
द्वितीय संस्करण : जून १९४८
तृतीय संस्करण ; मार्च १९५१
चतुर्थ संस्करण : मार्च १९५५